

आह्वान पुस्तिका-3

आतंकवाद के बारे में : विभ्रम और यथार्थ

आलोक रंजन



राहुल फ़ाउण्डेशन

लखनऊ

ISBN 978-81-87728-93-0

मूल्य : रु. 10.00

प्रथम संस्करण : जून, 2007

प्रकाशक : राहुल फ़ाउण्डेशन

69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज,
लखनऊ-226 006 द्वारा प्रकाशित

आवरण : रामबाबू

टाइपसेटिंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फ़ाउण्डेशन

मुद्रक : क्रिएटिव प्रिण्टर्स, 628/एस-28, शक्तिनगर, लखनऊ

Aatankvad ke Bare Mein: Vibhram aur Yatharth
Article published in 'Aahwan'

विषयवस्तु

- आतंकवाद की परिभाषा के बारे में, जनक्रान्तियों की प्रकृति के बारे में, जनदिशा के बारे में और दक्षिणपन्थी भटकावों के बारे में 5
- आतंकवाद या दुस्साहसवाद : इतिहास के पन्नों पर एक सरसरी नज़र – कुछ ज़रूरी सबक़, कुछ कीमती निचोड़ 9
- सर्वहारा क्रान्ति की धारा के भीतर आतंकवाद – “वामपन्थी” दुस्साहसवाद। भटकावों के दो छोर – दक्षिणपन्थी अवसरवाद और “वामपन्थी” दुस्साहसवाद। विश्व कम्युनिस्ट आन्दोलन और भारतीय कम्युनिस्ट आन्दोलन के कुछ अनुभव। नक्सलबाड़ी किसान संघर्ष से निकली क्रान्तिकारी वामपन्थी धारा में “वामपन्थी” दुस्साहसवादी और दक्षिणपन्थी भटकाव। 14
- भाकपा (माओवादी) का कथित माओवाद : आतंकवादी राजनीति के परचम पर “जनदिशा” के बेलबूटे। कथित माओवादियों की दिवालिया विचारधारा, कठमुल्लावादी कार्यक्रम और शेखचिल्ली के सपनों जैसी क्रान्ति-योजना। 20

शासक वर्ग क्रान्ति को ही आतंकवाद बताता रहता है।
क्रान्तिकारी हिंसा और प्रतिक्रान्तिकारी हिंसा के बीच
फ़र्क समझना होगा। अहिंसा का भ्रामक मिथक और
वर्ग-युद्ध में हिंसा की सार्वकालिक ऐतिहासिक
सच्चाई। इतिहास में परिवर्तन का बल-सिद्धान्त।

27

हर प्रकार की हिंसा का मूल स्रोत – शासक वर्ग
की हिंसा। हर प्रकार के आतंकवाद का मूल स्रोत –
राजकीय आतंकवाद। हर शासक वर्ग आतंकवादी।
अमेरिका – दुनिया का सबसे बड़ा आतंकवादी।
प्रगतिशील आतंकवाद और प्रतिक्रियावादी
आतंकवाद के बारे में।

30

आतंकवाद के बारे में : विभ्रम और यथार्थ

पूरी दुनिया की मीडिया में आज यदि कोई शब्द सबसे अधिक पढ़ने-सुनने को मिलता है तो वह है – आतंकवाद, यानी टेररिज़्म! ऐसा लगता है कि सोते-जागते, उठते-बैठते, हर समय, दुनियाभर के सत्ताधारियों को आतंकवाद का भूत सताता रहता है।

सच्चाई यह है कि दुनियाभर के सत्ताधारी आतंकवाद से नहीं बल्कि जनक्रान्तियों के भूत से आतंकित रहते हैं। वे जनक्रान्तियों पर भी आतंकवाद का लेबल चस्पाँ कर देते हैं ताकि उन्हें बदनाम किया जा सके। जिस चीज़ से उनमें आतंक पैदा होता है, वे उसे ही आतंकवाद घोषित कर देते हैं। उनके शब्दकोश में आतंकवाद और जनक्रान्ति के बीच कोई फ़र्क नहीं होता। सत्ताधारी वर्ग हर हमेशा इस कोशिश में लगा रहता है कि इतिहास और सामाजिक-राजनीतिक परिघटनाओं की सही समझदारी जनसमुदाय के बीच न जा पाये, क्योंकि इस सही समझदारी के आधार पर ही बुनियादी सामाजिक परिवर्तन की सही दिशा तय होती है। इसलिए यह ज़रूरी हो जाता है कि हम राजनीतिक परिघटनाओं और प्रक्रियाओं की वैज्ञानिक परिभाषा और ऐतिहासिक विकास-प्रक्रिया से भलीभाँति परिचित हों।

आतंकवाद की परिभाषा के बारे में, जनक्रान्तियों की प्रकृति के बारे में, जनदिशा के बारे में और दक्षिणपन्थी भटकावों के बारे में

किसी भी व्यवस्था को बदलने की चाहत रखने वाले लोग जब मुख्य या एकमात्र रणनीति (स्ट्रैटजी) के रूप में आतंक का इस्तेमाल करते हैं, तो उसे आतंकवाद कहा जाता है। आतंकवाद व्यापक जनता की शक्ति के बजाय मुट्ठीभर क्रान्तिकारियों की वीरता, कुर्बानी के जज़्बे और हथियारों की ताक़त पर अधिक भरोसा करता है। वह विभिन्न वर्गों को उनकी माँगों-समस्याओं को लेकर जागृत, गोलबन्द और संगठित करने पर, सत्ताधारी शोषक वर्गों और उनकी राज्यसत्ता के विरुद्ध उनका (यानी जनता के विभिन्न वर्गों का) संयुक्त मोर्चा बनाने पर, जनसमुदाय को राज्यसत्ता और क्रान्ति के बारे में राजनीतिक रूप से शिक्षित करने की प्रक्रिया पर जोर नहीं देता। वह बन्दूक को राजनीति के मातहत नहीं बल्कि राजनीति को बन्दूक के मातहत रखता है। वह जनसंघर्ष को, आगे बढ़ती और पीछे हटती और फिर आगे बढ़कर आती लहरों जैसी प्रक्रिया में, निम्नतर धरातल से क्रमशः उच्चतर धरातल पर ले जाने में, और अन्ततः निर्णायक क्रान्तिकारी वर्ग-युद्ध की मंज़िल पर पहुँचाने

में विश्वास नहीं रखता। इतिहास की यह सीख है कि जीवन की हर चीज़ की तरह क्रान्तियों का विकास-पथ भी कुण्डलाकार होता है। आतंकवाद क्रान्ति के विकास-पथ को एक सीधी रेखा के रूप में देखता है। आतंकवाद सामरिक संघर्ष को ही क्रान्तिकारी संघर्ष के एकमात्र रूप के तौर पर, या प्रारम्भिक मंज़िल से ही प्रमुख रूप के तौर पर देखता है। इसीलिए वह राजनीति पर बन्दूक को प्रधानता देता है।

क्रान्ति की वैज्ञानिक भौतिकवादी समझ हमें बताती है कि शोषण और उत्पीड़न के शिकार लोग अपनी आर्थिक और राजनीतिक माँगों को लेकर स्वतःस्फूर्त ढंग से आन्दोलन और विद्रोह की कार्रवाई करते रहते हैं। लेकिन ये विद्रोह स्वतः आगे बढ़कर क्रान्ति का रूप नहीं ले सकते। क्रान्ति एक सचेतन वैज्ञानिक प्रक्रिया है, जिसकी एक सुसंगत समझ जनसमुदाय के थोड़े-से अगुवा तत्त्व इतिहास के अध्ययन, अपने समय में मौजूद समाज के सामाजिक-राजनीतिक ढाँचे एवं वर्ग-स्वरूप के अध्ययन, सभी समकालीन वर्ग-संघर्षों के अध्ययन और दुनिया के अन्य देशों में भी हो रही और हो चुकी क्रान्तियों के अध्ययन के सार-संकलन से हासिल करते हैं। यह एक सतत जारी प्रक्रिया होती है जो पूरे क्रान्तिकारी संघर्ष के दौरान 'व्यवहार-सिद्धान्त-व्यवहार' की प्रक्रिया के रूप में जारी रहती है। पूँजीवादी जनवादी क्रान्तियों के युग में भी (मिसाल के तौर पर 1776 की अमेरिकी क्रान्ति या 1789 की फ्रांसीसी क्रान्ति में) यह प्रक्रिया ऐसी ही होती थी, लेकिन यह मूलतः और मुख्यतः एक सचेतन प्रक्रिया नहीं थी। उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में यूरोप में पूँजीवाद के विरुद्ध सर्वहारा क्रान्तियों की प्रक्रिया की शुरुआत हुई और बीसवीं शताब्दी के साथ ही पूँजीवाद की चरम अवस्था – साम्राज्यवाद और सर्वहारा क्रान्तियों के युग की शुरुआत हुई। पूँजीवाद वर्ग-समाज की एक ऐसी अवस्था है, जहाँ से सर्वहारा के नेतृत्व में होने वाली समाजवादी क्रान्तियाँ (निस्सन्देह कई हार-जीतों और चढ़ाव-उतारों से गुज़रकर) वर्ग-विहीन समाज की दिशा में एक दीर्घकालिक संक्रमण की शुरुआत करेंगी। उत्पादन के साधनों पर स्वामित्व से पूर्णतः वंचित और जीवन-निर्वाह के लिए श्रम-शक्ति बेचने पर निर्भर, पूँजीवादी समाज का आधुनिक मज़दूर वर्ग – सर्वहारा वर्ग-समाज की सर्वोन्नत क्रान्ति का वाहक वर्ग है जो उत्पादन के साधनों पर निजी स्वामित्व का ही (जो अब तक के सभी वर्ग-समाजों की बुनियाद रही है) ख़ात्मा करके सभी वर्गों, वर्ग-शोषणों और वर्ग-संस्थाओं के विलोपन की दिशा में इतिहास को आगे ले जाने में सक्षम है। सर्वहारा क्रान्ति के विज्ञान ने इसी बात को विस्तार से दर्शन (द्वन्द्वात्मक और ऐतिहासिक भौतिकवाद), राजनीतिक अर्थशास्त्र और समाजवाद की विशिष्टताओं के गहन अध्ययन के रूप में प्रस्तुत किया तथा सर्वहारा वर्ग की क्रान्तिकारी पार्टी तथा सर्वहारा क्रान्ति की रणनीति एवं आम रणकौशल की एक विशद सैद्धान्तिकी प्रस्तुत की जो 1871 के पेरिस

6 / आतंकवाद के बारे में : विभ्रम और यथार्थ

कम्यून से लेकर बीसवीं शताब्दी की तमाम क्रान्तियों के दौरान लगातार विकसित होती रही और आगे भी होती रहेगी। सर्वहारा क्रान्ति के विज्ञान की यह बुनियादी समझ है कि आम जनता स्वतः विद्रोहों में उठकर क्रान्ति की मंजिल तक आगे नहीं बढ़ सकती। सर्वहारा की वर्ग-दृष्टि से सामाजिक क्रान्ति एक सचेतन वैज्ञानिक क्रिया है। जनता के शोषण की प्रकृति, जनता के विभिन्न वर्गों के बीच की एकता और अन्तरविरोध के मूल कारणों, पूँजीवादी उत्पादन-सम्बन्धों, सामाजिक सम्बन्धों और राजनीतिक तन्त्र को भलीभाँति समझे बिना तथा पूँजीवादी व्यवस्था का स्थान लेने वाली नयी व्यवस्था की रूपरेखा को समझे बिना, सर्वहारा क्रान्ति को सफल नहीं बनाया जा सकता। एक क्रान्तिकारी पार्टी सर्वहारा वर्ग के हरावल दस्ते के रूप में, उसकी सर्वाधिक संगठित शक्ति के रूप में, उसके सर्वोच्च संगठन और नेतृत्वकारी संगठन के रूप में, इसी काम को अंजाम देती है।

आम जनता अपने आर्थिक संघर्षों के दौरान संगठित होने और संघर्ष करने का प्रारम्भिक प्रशिक्षण लेती है और संगठन की शक्ति एवं महत्ता को पहचानती है। लेकिन आर्थिक संघर्षों के दौरान रोज़-रोज़ की परेशानियों के बीच जीने वाले मेहनतकश तात्कालिक माँगों की पूर्ति से मिलने वाली राहत के सीमान्तों के पार नहीं देख पाते। एक मालिक से लड़ते हुए वे यह नहीं समझ पाते कि पूरे मालिक वर्ग से और उनकी राज्यसत्ता से लड़े बिना समस्या का बुनियादी समाधान सम्भव नहीं। वे आर्थिक स्थिति को स्वतः राजनीति से नहीं जोड़ पाते। पूँजीवादी समाज के श्रम-विभाजन में मशीन के एक पुर्जे के समान काम करते हुए अलगाव (एलियनेशन) के शिकार मजदूर इतिहास और राजनीति की बुनियादी शिक्षा तो दूर, जीने की मानवीय परिस्थितियों तक से वंचित होते हैं। ऐसी स्थिति में वे स्वतः यह नहीं समझ पाते कि जब तक उनका शोषण करने वाली उत्पादन-प्रणाली बनी रहेगी तब तक मात्र कुछ आर्थिक रियायतों-राहतों के टुकड़े पाते रहने से कुछ नहीं होगा और उत्पादन-प्रणाली को बदलने का एकमात्र रास्ता है उस राजनीतिक व्यवस्था को बदलना जो पूरे आर्थिक-सामाजिक ढाँचे को बनाये रखने और चलाने की नीतियाँ बनाती और लागू करती है। सार-संक्षेप यह कि सामाजिक क्रान्ति का सवाल अपने बुनियादी और अन्तिम रूप में राज्यसत्ता का सवाल है। शोषक वर्गों की राज्यसत्ता का ध्वंस करके और अपनी राज्यसत्ता स्थापित करके ही मेहनतकश जनता अपने हितों के अनुरूप सामाजिक-राजनीतिक ढाँचे का निर्माण और संचालन कर सकती है। यह विचार आम जनता के आर्थिक संघर्षों के बीच से स्वतः नहीं पैदा होता। इसे सचेतन संगठित प्रक्रिया के द्वारा जनता के बीच ले जाना होता है। क्रान्ति की हरावल शक्तियाँ इसी काम को अंजाम देती हैं। वे जनता के आर्थिक संघर्षों के साथ-साथ उसकी राजनीतिक माँगों को लेकर समूचे शोषक

शासक वर्ग और उनकी राज्यसत्ता के विरुद्ध संघर्षों को संगठित करती हैं और इस प्रक्रिया में क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षा के माध्यम से उसे लगातार यह चेतना देती हैं कि बुनियादी और निर्णायक प्रश्न राज्यसत्ता का प्रश्न है और राजनीतिक क्रान्ति के बिना आर्थिक शोषण से मुक्ति सम्भव ही नहीं है। ज़ाहिर है कि क्रान्ति के विज्ञान को सांगोपांग आत्मसात करना, उसकी सैद्धान्तिक समझ बना लेना समूची जनता के लिए सम्भव नहीं हो सकता (समाजवादी संक्रमण के दौरान पूँजीवादी श्रम-विभाजन के प्रभावों की समाप्ति के बाद ही, बौद्धिक श्रम और शारीरिक श्रम के अन्तर की क्रमशः समाप्ति के बाद ही यह सम्भव हो सकता है)। यह काम क्रान्ति की नेतृत्वकारी शक्ति करती है। व्यापक जनसमुदाय विचारधारा और क्रान्तिकारी राजनीति के प्राधिकार को संघर्ष के अनुभवों के आधार पर तथा क्रान्तिकारी प्रचार एवं शिक्षा की सहायता से स्वीकार करता है। यानी वह दर्शन और अर्थशास्त्र की गहराइयों में तो नहीं उतर पाता लेकिन यह जान लेता है कि क्रान्ति ही एकमात्र रास्ता है और उसे किस प्रकार अंजाम दिया जायेगा और आने वाले समाज का ढाँचा, उत्पादन एवं राजकाज का तरीका कैसा होगा!

इतिहास में ऐसे भी लोग हुए हैं और आज भी हैं जो यह मानते रहे हैं कि मजदूरों को केवल आर्थिक संघर्ष ही करना चाहिए या आर्थिक संघर्ष ही आगे चलकर राजनीतिक संघर्ष में रूपान्तरित हो जाते हैं। इस चिन्तन-धारा को **अर्थवाद** कहा जाता रहा है। इसी चिन्तन से प्रेरित जो लोग मात्र ट्रेडयूनियनों संगठित करने पर ही ज़ोर देते रहे हैं और वैज्ञानिक समाजवाद को मार्गदर्शक मानने वाली पार्टी बनाने के कार्यभार की प्रत्यक्ष-परोक्ष अनदेखी करते रहे हैं, उन्हें **ट्रेडयूनियनवादी** कहा जाता रहा है। जो लोग मजदूरों के संघर्षों की स्वतःस्फूर्तता और ट्रेडयूनियन पर ही पूरा भरोसा करके सचेतन रूप से उनके राजनीतिक संघर्ष संगठित करने और उनकी क्रान्तिकारी राजनीतिक पार्टी बनाने के काम को किसी न किसी रूप में गैरज़रूरी मानते रहे हैं उन्हें **अराजकतावादी-संघाधिपत्यवादी** के नाम से जाना जाता है। वैज्ञानिक समाजवाद ने पूरे ज्ञात मानव इतिहास को वर्ग-संघर्षों का इतिहास बताते हुए यह स्पष्ट किया कि कोई भी शोषक वर्ग शोषितों को शान्तिपूर्वक सत्ता हस्तान्तरित नहीं करता। राज्यसत्ता वर्ग-विशेष के शासन-शोषण को कायम रखने का, एक विशेष सामाजिक-आर्थिक ढाँचे को बनाये रखने का केन्द्रीय उपकरण है। यह बल-प्रयोग द्वारा स्थापित एवं कायम रहती है और इसे बल-प्रयोग द्वारा ही नष्ट किया जा सकता है और नये वर्गों की हितपोषक नयी राज्यसत्ता कायम की जा सकती है। आज ऐसे वामपन्थियों की दुनिया में बहुतायत है जो बलात राज्यसत्ता को ध्वस्त करके नयी राज्यसत्ता बनाने के सिद्धान्त की जगह, यानी क्रान्तिकारी परिवर्तन की जगह, शान्तिपूर्ण संक्रमण का सिद्धान्त

8 / आतंकवाद के बारे में : विभ्रम और यथार्थ

प्रतिपादित करते हैं और संसद में बहुमत लाकर समाजवाद लाने का ख़्वाब दिखाया करते हैं। ऐसी सभी धाराएँ वस्तुतः मज़दूर आन्दोलन के बीच व्यवस्था के घुसपैठिये की और पूँजीवादी व्यवस्था की एक सुरक्षा पंक्ति की भूमिका निभाती हैं। इन्हें संशोधनवादी या दक्षिणपन्थी अवसरवादी कहा जाता है। आम बोलचाल की भाषा में इन्हें संसदमार्गी वामपन्थी भी कहा जाता है। क्रान्तिकारी राजनीति में दक्षिणपन्थी अवसरवाद प्रायः मध्यवर्गीय कायरता से पैदा होता है और फिर इसके नेता घुटे-घुटाये बुर्जुआ राजनीतिज्ञ में तब्दील हो जाते हैं और खुले ग़द्दारों की भूमिका में आ जाते हैं।

सर्वहारा क्रान्ति हर हालत में क्रान्तिकारी जनदिशा पर अमल करती है। क्रान्तिकारी जनदिशा का अर्थ यह मानना है कि व्यापक शोषित-उत्पीड़ित जनसमुदाय को जागृत, गोलबन्द और संगठित किये बिना किसी भी सामाजिक क्रान्ति को अंजाम नहीं दिया जा सकता। क्रान्ति थोड़े से क्रान्तिकारियों द्वारा की जाने वाली षड्यन्त्र की कार्रवाई नहीं है। इसे थोड़े-से लोग हथियारबन्द होकर, कुछ शोषकों या नेताओं की हत्या करके या आतंक पैदा करके नहीं कर सकते। यह भी एक ख़ामख़याली है कि न्याय के लिए कुछ लोगों को लड़ते-मरते देखकर या शासक वर्गों को आतंकित होते देख आम जनता उठ खड़ी होगी और क्रान्ति कर देगी। वह ऐसे लोगों के प्रति श्रद्धा-भाव रख सकती है, पर इससे स्वयं उठकर सक्रिय भूमिका में नहीं आ सकती। क्रान्ति मात्र राजनीतिक तख़्तापलट नहीं होती। कभी-कभी ऐसा भी हुआ है कि किसी आततायी तानाशाही के विरुद्ध आम जनता के समर्थन से कुछ लोगों ने तख़्तापलट कर दिया, लेकिन कालान्तर में वे नये सत्ताधारी ही एक विशेषाधिकार-प्राप्त शोषक अल्पतन्त्र में तब्दील हो गये। क्रान्ति की प्रक्रिया जब व्यापक जनता की जागृत पहलकदमी और सक्रिय भागीदारी से आगे बढ़ती है, तो जनता इसी दौरान निर्णय लेना और शासन-सूत्र संभालना भी सीखती है और तभी जाकर क्रान्ति के बाद सच्चे अर्थों में जनता की सत्ता कायम हो सकती है, जनता स्वयं अपनी भाग्य-नियन्ता बन सकती है और नयी सामाजिक-आर्थिक संरचना का निर्माण कर पाती है। जनता ही वास्तविक इतिहास-निर्मात्री शक्ति है – यह मानना ही क्रान्तिकारी जनदिशा है।

आतंकवाद या दुस्साहसवाद :
इतिहास के पन्नों पर एक
सरसरी नज़र – कुछ ज़रूरी
सबक, कुछ कीमती निचोड़

जिन लोगों को व्यापक मेहनतकश जनसमुदाय की समष्टिगत ऐतिहासिक शक्ति और सृजनशीलता में भरोसा नहीं होता, जो जनता को एक निष्क्रिय शक्ति या रेवड़ समझते हैं, उनकी यह समझ होती है कि जनता अपनी मुक्ति स्वयं

नहीं हासिल करती बल्कि कुछ थोड़े-से वीर, युयुत्सु क्रान्तिकारी अपनी कार्यवाहियों के ज़रिये उसके मुक्तिदाता की भूमिका निभाते हैं। इतिहास में सर्वहारा क्रान्ति की धारा के जन्म के पहले भी ऐसे क्रान्तिकारी मौजूद थे जिनका विश्वास जनक्रान्ति में नहीं था और जो मानते थे कि थोड़े-से क्रान्तिकारी हथियार उठाकर **षड्यन्त्र और आतंक के द्वारा** सत्ता-परिवर्तन का लक्ष्य हासिल कर सकते हैं। फ्रांस की 1789 की पूँजीवादी जनवादी क्रान्ति के बाद सत्तारूढ़ बुर्जुआ वर्ग जब क्रान्ति के घोषित लक्ष्यों से पीछे हटकर पूँजीवादी व्यवस्था का सुदृढ़ीकरण करने लगा और जनता के साथ विश्वासघात करने लगा तो वहाँ भी ऐसी एक राजनीतिक धारा उभरी जिसने एक जनवादी समतावादी समाज की स्थापना के लिए, जनता को लामबन्द करने के बजाय सशस्त्र षड्यन्त्र और क्रान्तिकारी आतंक का सहारा लिया। उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य से यूरोप के मजदूर आन्दोलन में **माक्स-एंगेल्स** द्वारा प्रवर्तित वैज्ञानिक समाजवाद के विचारों का प्रचार-प्रसार होने लगा। लेकिन वैज्ञानिक समाजवाद के साथ-साथ आतंकवाद या दुस्साहसवाद की धारा भी मौजूद थी। फ्रांसीसी क्रान्तिकारी और कल्पनावादी कम्युनिस्ट **लुई ओग्युस्त ब्लांकी** इसी धारा के एक अग्रणी प्रतिनिधि थे। ब्लांकी और ब्लांकीपन्थियों का यह मानना था कि “उजरती मजदूरी की दासता से मानवजाति का उद्धार सर्वहारा के वर्ग-संघर्ष के रास्ते नहीं, बल्कि बुद्धिजीवियों की छोटी-सी अल्पसंख्या द्वारा रचे षड्यन्त्र के रास्ते” होगा। उन्होंने सफल विद्रोह के लिए ठोस परिस्थितियों को ध्यान में रखने और जनसाधारण के साथ सम्बन्ध कायम करने के बजाय थोड़े-से षड्यन्त्रकारियों की गुप्त सरगर्मियों का रास्ता अपनाया। इस रास्ते की विफलता असन्दिग्ध थी और ऐसा ही हुआ। रूस में भी उन्नीसवीं शताब्दी के नवें दशक में **नरोदवादी आन्दोलन** की एक धारा ने आतंकवाद का रास्ता चुना था और विफल हुई थी। नरोदवाद रूस के क्रान्तिकारी जनवादी आन्दोलन में 1860 और 1870 के दशकों में जन्मी एक राजनीतिक प्रवृत्ति थी। नरोदवादी अपने को समाजवादी कहते थे, लेकिन उनका समाजवाद कल्पनावादी था जिसमें सामाजिक विकास के क्रम और प्रक्रिया की कोई स्पष्ट समझ नहीं थी। नरोदवादी रूस में पूँजीवादी विकास को असम्भव मानते थे और सर्वहारा के बजाय किसानों को मुख्य क्रान्तिकारी शक्ति मानते थे। उनका मानना था कि रूसी किसान ज़ार की निरंकुश सत्ता को उखाड़कर पुराने ग्राम-समुदायों को ही आगे विकसित करके समाजवाद का निर्माण करेंगे। किसानों को संगठित करने में विफल होने के बाद नरोदवाद की मुख्यधारा उदारपन्थी सुधारवादी बन गयी और क्रान्ति के बजाय मात्र कुछ बुर्जुआ सुधारों की माँग तक सिमटकर रह गयी। लेकिन इसी आन्दोलन की एक दूसरी धारा 1879 में **नरोदनाया वोल्या** के रूप में सामने आयी। इस धारा ने राजनीतिक संघर्ष की आवश्यकता पर बल तो दिया, लेकिन

अपने अवैज्ञानिक, निम्न-पूँजीवादी (मध्यवर्गीय) नज़रिये के कारण षड्यन्त्र और व्यक्तिगत आतंक को ही राजनीतिक संघर्ष का पर्याय मान बैठी। कई असफल प्रयासों के बाद, 1881 में ज़ार अलेक्सान्द्र की हत्या के बाद कई लोगों को फाँसी और कारावास की सज़ा सुनायी गयी और भीषण दमन के बाद 'नरोदनाया वोल्या' की गतिविधियों का अन्त हो गया।

बीसवीं शताब्दी में उपनिवेशों में जारी राष्ट्रीय मुक्ति-संघर्षों में अधिकांशतः पूँजीवादी जनवाद और सर्वहारा नेतृत्व वाले लोक जनवाद की राजनीतिक धाराएँ क्रमशः पूँजीपति वर्ग और सर्वहारा वर्ग के नेतृत्व में, राष्ट्रीय मुक्ति-संघर्ष पर अपने वर्चस्व के लिए संघर्षरत दीखती हैं। लेकिन इनके साथ-साथ अधिकांश देशों में एक निम्न-पूँजीवादी (पेटी-बुर्जुआ) या मध्यवर्गीय क्रान्तिकारी धारा भी सक्रिय दीखती है। यह धारा क्रान्तिकारी आतंकवादी धारा थी जो राष्ट्रीय मुक्ति, जनवादी गणराज्य की स्थापना और कभी-कभी समाजवाद तक को अपना लक्ष्य घोषित करती थी, लेकिन इस लक्ष्य-प्राप्ति के लिए इस धारा के गुप्त क्रान्तिकारी संगठन किसानों और मजदूरों को संगठित करने के बजाय छोटे-छोटे दस्तों की हथियारबन्द कार्रवाइयों, तख़्तापलट षड्यन्त्रों और आतंक का मार्ग अपनाते थे। इसका कारण आतंकवाद या दुस्साहसवाद के वर्ग-चरित्र में निहित है।

आतंकवाद वस्तुतः निम्न-पूँजीवादी या मध्यवर्गीय क्रान्तिकारी प्रवृत्ति है। मध्य वर्ग बीच में खड़ा पूँजीवादी समाज का एक ऐसा वर्ग है जिसका ऊपरी संस्तर तो पूँजीवादी महाप्रभुओं के टुकड़खोर (प्रशासक, बुद्धिजीवी, राजनीतिक प्रतिनिधि, सिद्धान्तकार आदि के रूप में) की भूमिका निभाता है, लेकिन मँझोले और निचले संस्तर पूँजी की लूट-मार से त्रस्त होते हैं। अर्द्धसामन्ती-औपनिवेशिक-अर्द्धऔपनिवेशिक समाजों में यह मध्य वर्ग पूँजीवादी-साम्राज्यवादी शोषण के साथ ही सामन्ती शोषण का भी शिकार था और राष्ट्रीय मुक्ति, जनवादी गणराज्य की स्थापना और समाजवाद का समर्थक था। पूँजीवादी शोषण इस मध्य वर्ग को समाजवाद के लक्ष्य के निकट ला खड़ा करता है और इसके सबसे रैडिकल तत्त्वों को क्रान्तिकारी बदलाव का पक्षधर बना देता है। लेकिन ये मध्यवर्गीय क्रान्तिकारी अपने बूते ही यह क्रान्ति सम्पन्न कर लेना चाहते हैं। व्यापक मेहनतकश जनता पर – प्रत्यक्ष उत्पादक वर्ग पर, उसकी पहलकदमी और सर्जनात्मकता पर उन्हें भरोसा नहीं होता क्योंकि उत्पादक श्रम से वे कटे होते हैं, उत्पीड़ित होने के बावजूद बुर्जुआ श्रम-विभाजन से बँधे समाज में बौद्धिक श्रम करने वाले का विशेष अधिकार और विशेष दर्जा उन्हें हासिल होता है तथा प्रत्यक्ष उत्पादक वर्गों को हेय दृष्टि से देखना या अविश्वास करना उनका वर्गीय संस्कार होता है। इसीलिए जनता के बजाय वे स्वयं को ही जनता

के मुक्तिदाता और एकमात्र क्रान्तिकारी शक्ति के रूप में देखते हैं। उत्पादन-प्रक्रिया से प्रत्यक्ष जुड़ाव नहीं होने के कारण ये मध्यवर्गीय क्रान्तिकारी अव्यावहारिक भी होते हैं। ठोस परिस्थितियों एवं राज्यसत्ता की भौतिक-आत्मिक शक्ति के बारे में उनका आकलन एकदम शोखचिल्लीनुमा होता है और इसीलिए वे समझते हैं कि गुप्त षड्यन्त्रों, तोड़फोड़, यहाँ-वहाँ हथियारबन्द दस्तों की सशस्त्र कार्रवाइयों और आतंक के द्वारा वह शासक वर्गों को सत्ता छोड़ने के लिए विवश कर देंगे। प्रत्यक्ष उत्पादन से कटा हुआ यह वर्ग प्रकृति से ही अव्यावहारिक और जल्दबाज़ होता है और तुरत-फुरत क्रान्ति कर डालने की “मासूम-पवित्र” उद्विग्नता इसकी फ़ितरत होती है। यही उद्विग्नता आतंकवादी या दुस्साहसवादी कार्यदिशा के रूप में सामने आती रही है, आज भी आ रही है और आगे भी आती रहेगी।

भारत में क्रान्तिकारी आतंकवाद की धारा बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ से ही युगान्तर-अनुशीलन आदि गुप्त क्रान्तिकारी संगठनों के रूप में मौजूद थी। चूँकि भारतीय मध्य वर्ग एक औपनिवेशिक सामाजिक संरचना के गर्भ से पैदा हुआ था और यूरोप की तरह पुनर्जागरण-प्रबोधन से पैदा हुए मानववाद, जनवाद और भौतिकवादी तर्कणा की वैचारिक विरासत इसे घुट्टी में नहीं मिली थी, इसलिए भारत के आतंकवादी क्रान्तिकारियों की पहली पीढ़ी के पास एक जनवादी गणराज्य स्थापित करने का भी स्पष्ट लक्ष्य नहीं था। उनकी दृष्टि अतीतोन्मुखी और पुनरुत्थानवादी थी और सेक्युलर होने के बजाय वे धार्मिक पूर्वाग्रहों से ग्रस्त थे। इन प्रतिक्रियावादी विचारों के बावजूद, औपनिवेशिक गुलामी का विरोध करने और वस्तुगत तौर पर अपनी कार्रवाइयों से जनता को प्रेरित करने के कारण, अपने समय में उनकी भूमिका ऐतिहासिक रूप से प्रगतिशील थी। फिर धीरे-धीरे भारत के क्रान्तिकारी आन्दोलन में क्रान्तिकारी जनवादी विचारों का प्रवेश हुआ। **गुदर पार्टी** और **हिन्दुस्तान रिपब्लिकन आर्मी** के क्रान्तिकारियों ने अमेरिकी और फ़्रांसीसी बुर्जुआ जनवादी क्रान्ति के आदर्शों से विशेष प्रेरणा ली और 1917 की रूसी समाजवादी क्रान्ति के बाद समाजवादी विचारों का भी उन पर प्रभाव पड़ा। **हिन्दुस्तान सोशलिस्ट रिपब्लिकन एसोसिएशन (एच.एस.आर.ए.)** का दौर एक महत्त्वपूर्ण संक्रमण का दौर था। एच.एस.आर.ए. के युवा क्रान्तिकारियों ने **भगतसिंह** की अगुवाई में, न केवल राष्ट्रीय मुक्ति के साथ ही समाजवाद को अपना अन्तिम लक्ष्य घोषित किया, बल्कि आतंकवादी सशस्त्र कार्रवाइयों का रास्ता छोड़कर व्यापक किसान मजदूर जनता को संगठित करने की जनदिशामूलक सोच की दिशा में भी वे आगे बढ़े। लेकिन **आज़ाद, भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु, भगवतीचरण वोहरा, यतीन्द्रनाथ दास** आदि अग्रणी कामरेडों की शहादत और अन्य अधिकांश की गिरफ्तारी के बाद यह आन्दोलन बिखर गया।

1930 के दशक में एच.एस.आर.ए. के क्रान्तिकारियों का बड़ा हिस्सा भारत के कम्युनिस्ट आन्दोलन में शामिल हो गया।

फाँसी चढ़ने से पहले, जेल में गहन अध्ययन करते हुए भगतसिंह क्रान्तिकारी आतंकवादी कार्यदिशा की निष्फलता को भलीभाँति समझ चुके थे और मार्क्सवाद को स्वीकार करके क्रान्तिकारी जनदिशा के उत्कट पक्षधर बन चुके थे। जेल से लिखे गये अपने कई लेखों और छात्रों-युवाओं के नाम भेजे गये सन्देशों में उन्होंने बार-बार यह लिखा था कि युवा क्रान्तिकारियों को नये सिरे से सर्वहारा क्रान्ति के लक्ष्य को समर्पित एक हरावल क्रान्तिकारी पार्टी तो बनानी होगी तथा गुप्त षड्यन्त्रों और सशस्त्र कार्रवाइयों के बजाय उन्हें व्यापक मजदूर-किसान जनता को जागृत और संगठित करना होगा। भगतसिंह ने अपने आखिरी महत्त्वपूर्ण दस्तावेज़ में क्रान्तिकारी कार्यक्रम का नया मसविदा पेश करते हुए आतंकवाद की जो आलोचना प्रस्तुत की थी वह आज भी प्रासंगिक है। उक्त दस्तावेज़ में भगतसिंह ने सशस्त्र क्रान्ति की अपरिहार्यता को स्वीकार करते हुए भी जनदिशा लागू करते हुए मजदूरों-किसानों को संगठित करने पर बल दिया है। उन्होंने स्पष्ट लिखा है कि, “क्रान्तिकारी जीवन के शुरू के चन्द दिनों के सिवाय, न तो मैं आतंकवादी हूँ और न ही था; और मुझे पूरा यकीन है कि इस तरह के तरीकों से हम कुछ भी हासिल नहीं कर सकते।” आगे वह लिखते हैं :

“...बम का रास्ता 1905 से चला आ रहा है और क्रान्तिकारी भारत पर यह एक दर्दनाक टिप्पणी है। ...आतंकवाद हमारे समाज में क्रान्तिकारी चिन्तन के पकड़ के अभाव की अभिव्यक्ति है; या एक पछतावा। इसी तरह यह अपनी असफलता का स्वीकार भी है। ...सभी देशों में इसका इतिहास असफलता का इतिहास है – फ़्रांस, रूस, जर्मनी में, बाल्कन देशों में, स्पेन में – हर जगह इसकी यही कहानी है। इसकी पराजय के बीज इसके भीतर ही होते हैं।”

ऊपर इस बात की चर्चा की जा चुकी है कि हम साम्राज्यवाद और सर्वहारा क्रान्तियों के ऐतिहासिक युग में जी रहे हैं और सर्वहारा क्रान्ति का विज्ञान क्रान्तिकारी जनदिशा का पक्षधर है। वह थोड़े-से लोगों की कुर्बानी की भावना, वीरता तथा षड्यन्त्र और आतंकवादी कार्रवाइयों के सहारे नहीं, बल्कि व्यापक जनसमुदाय को जागृत और संगठित करके बुर्जुआ राज्यसत्ता को बलपूर्वक उखाड़ फेंकने की बात करता है। लेकिन सर्वहारा क्रान्ति की धारा के भीतर भी मध्यवर्गीय क्रान्तिवाद की प्रवृत्ति हमेशा से मौजूद रही है और आज भी मौजूद है। मध्यवर्गीय क्रान्तिवाद का यह भटकाव कथनी में वैज्ञानिक समाजवाद या मार्क्सवाद की दुहाई देते हुए भी व्यापक जनता को संगठित करने के बजाय, ठोस परिस्थितियों का खयाल किये बिना ही, आनन-फ़ानन में क्रान्ति को

सर्वहारा क्रान्ति की धारा के भीतर आतंकवाद – “वामपन्थी” दुस्साहसवाद। भटकावों के दो छोर – दक्षिणपन्थी अवसरवाद और “वामपन्थी” दुस्साहसवाद। विश्व कम्युनिस्ट आन्दोलन और भारतीय कम्युनिस्ट आन्दोलन के कुछ अनुभव। नक्सलबाड़ी किसान-संघर्ष से निकली क्रान्तिकारी वामपन्थी धारा में “वामपन्थी” दुस्साहसवादी और दक्षिणपन्थी भटकाव। अंजाम देने के लिए हथियारबन्द दस्तों की सशस्त्र कार्रवाइयों को, षड्यन्त्र और आतंक की रणनीति को ही अमल में लाता है। यह पुराने आतंकवाद या दुस्साहसवाद का ही एक नया रूप है और चूँकि यह कम्युनिस्ट होने का दावा करता है, इसलिए इसे “वामपन्थी” (या अतिवामपन्थी) दुस्साहसवाद और अतिवामपन्थ की संज्ञा दी जाती है। ऊपर हमने वामपन्थी आन्दोलन में दक्षिणपन्थी अवसरवादी भटकावों की चर्चा की है। “वामपन्थी” दुस्साहसवाद दूसरे छोर का भटकाव है, इसलिए इसे “वामपन्थी” अवसरवाद भी कहा जाता है। “वामपन्थी” अवसरवाद संघर्ष के निम्नतर रूपों की उपेक्षा करके मनोगतवादी ढंग से सीधे संघर्ष के उच्चतम और निर्णायक रूप – सशस्त्र संघर्ष को अपनाने में यकीन रखता है और व्यापक जनसमुदाय की सक्रिय पहलकदमी, भागीदारी और समर्थन के अभाव में हथियारबन्द दस्तों की कार्रवाइयों के रूप में इसे अंजाम देता है। “वामपन्थी” दुस्साहसवाद प्रायः आर्थिक संघर्ष को ही अर्थवाद और ट्रेडयूनियन कार्रवाइयों को ही ट्रेडयूनियनवाद बताकर खारिज कर देता है। आम जनता को संगठित करने के लिए की जाने वाली सभी कार्रवाइयों और संघर्ष के सभी निम्नतर रूपों को वह सुधारवाद और दक्षिणपन्थ का लेबल चस्पाँ करके खारिज कर देता है। मार्क्सवाद संसदीय मार्ग से सर्वहारा सत्ता की स्थापना के दक्षिणपन्थी विचार को तो सिरे से खारिज कर देता है, लेकिन क्रान्तिकारी विचारों के प्रचार और पूँजीवादी व्यवस्था के भण्डाफोड़ के लिए किसी बुर्जुआ जनवादी देश में स्थिति होने पर, रणकौशल (टैक्टिक्स) के रूप में बुर्जुआ संसदीय चुनावों और संसद के मंच के इस्तेमाल को उचित ठहराता है। लेकिन “वामपन्थी” दुस्साहसवाद इसे रणनीति (स्ट्रैटजी) का प्रश्न बताता है और किसी भी हाल में संसदीय चुनावों में भागीदारी को ही संसदवाद या दक्षिणपन्थी अवसरवाद घोषित करते हुए इस प्रश्न पर पूरी तरह से बहिष्कारवादी रुख अपनाता है। निचोड़ के तौर पर, “वामपन्थी” दुस्साहसवादी राजनीति आतंकवादी राजनीति है। यह

सर्वहारा राजनीति के मुखौटे वाली मध्यवर्गीय क्रान्तिवाद की राजनीति है। माओ त्से-तुङ ने दुस्साहसवाद और दक्षिणपन्थी अवसरवाद के चरित्र की कुछ विशिष्टताओं को इन शब्दों में स्पष्ट किया है : “अगर हम जनसमुदाय के जागृत होने से पहले ही पेशकदमी करेंगे, तो यह दुस्साहसवाद होगा। अगर हमने जनसमुदाय की इच्छा के विपरीत कोई काम करने के लिए उसका नेतृत्व करने की हठधर्मी की, तो हम निश्चित रूप से असफल हो जायेंगे। अगर हम जनसमुदाय द्वारा आगे बढ़ने की माँग होने पर भी आगे नहीं बढ़ेंगे, तो यह दक्षिणपन्थी अवसरवाद होगा।”

पूरी दुनिया की लगभग सभी सर्वहारा क्रान्तियों में समय-समय पर दक्षिणपन्थी अवसरवाद और “वामपन्थी” अवसरवाद के विचलन पारी-पारी से सिर उठाते रहे हैं और इन्हें ठिकाने लगाकर ही सर्वहारा क्रान्तियाँ आगे बढ़ पाने में सफल होती रही हैं। ये दोनों ही मध्यवर्गीय प्रवृत्तियाँ हैं। एक मध्य वर्ग की सुधारवादी प्रवृत्ति है, जो वामपन्थी क्रान्तिकारी आन्दोलन को पतित करके बुर्जुआ वर्ग की सेवा में लगा देना चाहती है। दूसरी मध्यवर्गीय क्रान्तिकारी प्रवृत्ति है, जो वामपन्थी क्रान्तिकारी आन्दोलन को लक्ष्यच्युत और विफल बनाकर जनसमुदाय में निराशा का माहौल बनाती है और इस प्रकार, तमाम क्रान्तिकारी सदिच्छाओं और कुर्बानियों के बावजूद, वस्तुगत तौर पर शासक वर्गों की लक्ष्यसिद्धि में ही सहायक बनती है। किसी भी पूँजीवादी समाज में सुधार और बदलाव की चाहत रखने वाली मध्यवर्गीय जमातों की मौजूदगी और सर्वहारा क्रान्ति के एक दुलमुल सहायक वर्ग के रूप में मध्य वर्ग की मौजूदगी के कारण, स्वाभाविक तौर पर सर्वहारा क्रान्ति की हरावल शक्तियों की राजनीति और विचारधारा में भी मध्य वर्ग की राजनीति और विचारधारा की घुसपैठ होती रहती है और इनके विरुद्ध सतत संघर्ष की प्रक्रिया सर्वहारा क्रान्ति की सफलता की एक बुनियादी गारण्टी होती है।

ऐसा भी प्रायः देखने में आता रहा है कि “वामपन्थी” दुस्साहसवाद की निम्न पूँजीवादी लाइन विफल हो जाने और पिट जाने के बाद अपना कायाकल्प करके दक्षिणपन्थी “अवसरवाद” की निम्न-पूँजीवादी लाइन बन जाती है। और यह भी होता है कि कभी-कभी “वामपन्थी” दुस्साहसवाद अपने असली चरित्र पर पर्दा डालने के लिए रस्मी तौर पर कुछ जनकारवाइयाँ भी करता है और तब “वामपन्थी” और दक्षिणपन्थी अवसरवाद की विचित्र खिचड़ी का एक अद्भुत नमूना देखने को मिलता है। चूँकि इन दोनों प्रवृत्तियों का बुनियादी वर्ग-चरित्र एक ही होता है इसलिए ऐसे विचित्र समागम में दरअसल कुछ भी विचित्र या आश्चर्यजनक नहीं होता। अक्सर यह भी होता है कि “वामपन्थी” दुस्साहसवाद की कोई एक धारा विघटित हो जाती है या दक्षिणपन्थ की दिशा में चली जाती है और फिर उसका स्थान “वामपन्थी” दुस्साहसवाद की कोई दूसरी धारा ले लेती है।

रूसी क्रान्ति और चीनी क्रान्ति की पूरी विकास-प्रक्रिया में “वामपन्थी” और दक्षिणपन्थी भटकाव लगातार, एक के बाद एक सिर उठाते रहे और इन्हें परास्त करके ही ये क्रान्तियाँ आगे बढ़ पाने में सफल हो सकीं। अन्तरराष्ट्रीय कम्युनिस्ट आन्दोलन में भी सही धारा इन प्रवृत्तियों के विरुद्ध निरन्तर संघर्षरत रही। दूसरे इण्टरनेशनल में हावी दक्षिणपन्थी अवसरवादियों के विरुद्ध लेनिन ने समझौताविहीन संघर्ष चलाया और अक्टूबर क्रान्ति के बाद यूरोप के कुछ देशों में जब “वामपन्थी” अवसरवाद के भटकाव ने सिर उठाया तो उसके विरुद्ध संघर्ष में भी उन्होंने कोई रियायत नहीं बरती। माओ त्से-तुङ के नेतृत्व में चीन की कम्युनिस्ट पार्टी का आचरण भी ऐसा ही रहा।

भारत के कम्युनिस्ट आन्दोलन का इतिहास इससे कुछ अलग रहा है। शुरू से ही यहाँ की कम्युनिस्ट पार्टी का विचारधारात्मक आधार कमजोर रहा और यह दक्षिणपन्थी और दुस्साहसवादी भटकाव के बीच झूलती रही। पी.सी. जोशी के महासचिव होने के दौरान पार्टी दक्षिणपन्थी भटकाव का शिकार रही और अनुकूल क्रान्तिकारी स्थितियों में पहलकदमी और सही निर्णय से अक्सर चूकती रही। राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद के वर्षों में, बी.टी. रणदिवे के महासचिव होने के दौरान पार्टी ने कुछ समय के लिए दुस्साहसवादी लाइन अपनायी, जिसकी विफलता के बाद कम्युनिस्ट आन्दोलन को गम्भीर धक्का लगा। तेलंगाना किसान संघर्ष की पराजय के बाद पूरी पार्टी ही संशोधनवादी और संसदमार्गी हो गयी। विचारधारा से विचलन की परिणति अन्ततोगत्वा विचारधारा से प्रस्थान में परिणत हो गयी और पार्टी का वर्ग-चरित्र ही बदल गया। जनता के बीच काम करने वाले आम कार्यकर्ता गहन मायूसी के शिकार थे, लेकिन उनकी क्रान्तिकारी भावनाएँ मौजूद थीं। भाकपा में जब विभाजन हुआ और 1964 में भाकपा (मार्क्सवादी) (या माकपा) का गठन हुआ तो चूँकि यह नयी पार्टी भाकपा को संशोधनवादी बता रही थी और कुछ रैडिकल तेवर अपना रही थी, इसलिए कृतारों में कुछ उम्मीदें पैदा हुईं। लेकिन जल्दी ही यह स्पष्ट हो गया कि भाकपा (मार्क्सवादी) का रास्ता भी दक्षिणपन्थी अवसरवाद का ही रास्ता है और इन पार्टियों के मतभेद विचारधारा और वर्ग-चरित्र का नहीं, बल्कि मात्र कुछ नीतियों का ही है।

यह समय था जब पूरी दुनिया में खुश्चेवी संशोधनवाद के विरुद्ध चीनी कम्युनिस्ट पार्टी के संघर्ष का शोर था और चीन के भीतर भी दक्षिणपन्थी अवसरवादियों के विरुद्ध संघर्ष सर्वहारा सांस्कृतिक क्रान्ति (1966-67) के महाविस्फोट का रूप ले चुका था। भारत के वामपन्थी कार्यकर्ताओं पर भी इसका प्रेरक प्रभाव पड़ रहा था। इसी समय, 1967 में पश्चिम बंगाल के दार्जिलिंग ज़िले के नक्सलबाड़ी इलाके में एक प्रचण्ड किसान उभार फूट पड़ा। नक्सलबाड़ी किसान संघर्ष माकपा की दार्जिलिंग ज़िला कमेटी के संगठनकर्ता कानू सान्याल, जंगल सन्थाल

आदि के नेतृत्व में संगठित हुआ था, लेकिन उसे कुचलने में बंगाल की संविद सरकार और उसमें शामिल माकपा ने (ज्योति बसु ही गृह एवं पुलिस विभाग के प्रभारी मन्त्री थे) कोई रू-रियायत नहीं बरती। माकपा नेतृत्व का संशोधनवादी चरित्र अब एकदम नंगा हो चुका था। नक्सलबाड़ी किसान उभार ने संशोधनवाद से निर्णायक विच्छेद कर कृतारों को एक नयी क्रान्तिकारी पार्टी बनाने की दिशा में प्रेरित किया और इस दृष्टि से उसका ऐतिहासिक महत्त्व था। माकपा से निकलकर क्रान्तिकारी कृतारें पूरे देश में ग्रुपों में संगठित होने लगीं, जिनमें तालमेल करके अखिल भारतीय स्तर की एक क्रान्तिकारी कम्युनिस्ट पार्टी गठित करने की दिशा में आगे बढ़ने के लिए एक अखिल भारतीय तालमेल कमेटी गठित की गयी। लेकिन यह प्रक्रिया बीच में ही बाधित हो गयी। सत्रह वर्षों तक के संशोधनवादी घटाटोप से बाहर आकर एक नयी शुरुआत अभी हुई ही थी कि “वामपन्थी” दुस्साहसवाद ने पूरी प्रक्रिया को ही विपथगामी बना दिया। नक्सलबाड़ी किसान संघर्ष में जनदिशा लागू करने वाले स्थानीय संगठनकर्ता अपनी वैचारिक कमज़ोरी के चलते उसे आगे नहीं बढ़ा सके और अन्ततोगत्वा उन्होंने चारु मजूमदार की आतंकवादी लाइन के आगे घुटने टेक दिये (चारु मजूमदार निष्कासन से पूर्व माकपा के दार्जिलिंग ज़िले के सेक्रेटरी थे)। आन्ध्र के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी (डी.वी. राव-नागा रेड्डी ग्रुप) चूँकि क्रान्तिकारी जनदिशा के पक्षधर थे, इसलिए निहायत एकतरफ़ा और नौकरशाहाना तरीके से कम्युनिस्ट क्रान्तिकारियों की तालमेल कमेटी से उन्हें निकाल बाहर किया गया।

1970 में भाकपा (मा.ले.) गठित हुई, पर यह नयी पार्टी जनदिशा के बजाय आतंकवाद की लाइन पर गठित हुई थी। चारु मजूमदार की “वामपन्थी” दुस्साहसवादी लाइन नक्सलबाड़ी के बाद श्रीकाकुलम में अपने पूरे रंग-रूप में सामने आयी। वस्तुतः इस आतंकवाद का रूप भी अत्यन्त भौंडा था। चारु मजूमदार ने किसी भी प्रकार के जनसंगठन बनाने या कानूनी दायरे के संघर्ष या जनान्दोलनात्मक कार्रवाइयों को ही संशोधनवाद घोषित कर दिया। ट्रेडयूनियन मोर्चे को पूरी तरह छोड़कर क्रान्तिकारी धारा के समर्थन में खड़े औद्योगिक मज़दूरों की भारी आबादी को संशोधनवादियों-ट्रेडयूनियनवादियों के भरोसे छोड़ दिया गया। चारु मजूमदार ने ‘वर्ग-शत्रुओं के सफ़ाये’ की लाइन को पूरे ज़ोर-शोर से लागू किया। पार्टी कृतारों के समक्ष एकमात्र महत्त्वपूर्ण काम था, छोटे-छोटे सशस्त्र दस्ते बनाकर भूस्वामियों, सूदखोरों और भ्रष्ट ज़ालिम सरकारी अधिकारियों की हत्या करना। यह व्यक्तिगत आतंकवाद का एक अत्यन्त भौंडा-विकृत रूप था। गाँवों में जारी कार्रवाइयों का विस्तार जब शहरी आतंकवाद के रूप में हुआ तो इसका दिवालियापन और अधिक नंगा हो गया। व्यापक जनसमुदाय की पहलकदमी

और समर्थन के अभाव में आतंकवादी कार्रवाइयाँ करने वाले दस्ते अलग-थलग पड़ते गये और राज्यसत्ता को बर्बर दमन का खूब अवसर मिला जिसके दायरे में आम ग़रीबों की व्यापक आबादी भी आ गयी। आतंकवादी लाइन एक के बाद एक कई क्षेत्रों में लागू हुई और दमन-उत्पीड़न के बाद पिटती चली गयी। अब पार्टी के भीतर से भी इस लाइन के विरोध के स्वर उठने लगे, लेकिन हर ऐसी आवाज़ को दबा दिया गया। इसके बावजूद पार्टी की एकता कायम नहीं रह सकी। 1972 में चारु मजूमदार की मृत्यु से पहले ही पार्टी में टूट-बिखराव का सिलसिला शुरू हो चुका था। 1975 में आपातकाल लागू होने के पहले से ही, जनता से अलग-थलग पड़े हुए आन्दोलन को राजकीय आतंकवाद (यानी सरकारी दमनचक्र) ने फ़र्जी मुठभेड़ों, जेल में यातना और हत्याओं, फ़र्जी मुक़दमों और अधिकांश नेताओं एवं प्रमुख संगठनकर्ताओं की गिरफ़्तारी के ज़रिये कमजोर करने में कोर-कसर नहीं रख छोड़ी थी। कोई भी क्रान्तिकारी आन्दोलन यदि जनसमुदाय के भीतर अपनी गहरी जड़ें जमा ले, तो राज्यसत्ता का क्रूरतम दमनचक्र भी उसे तबाह नहीं कर सकता। लेकिन आतंकवादी लाइन चूँकि संगठन को जनता से काट देती है, इसलिए सत्ता दमन के हथकण्डे से उससे निपट लेने में सफल हो जाती है।

भारत के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन में टूट-फूट और बिखराव का जो सिलसिला सैंतीस वर्षों पहले शुरू हुआ, वह कई अवसरवादी एकताओं और विभाजनों से होते हुए आज तक जारी है। इसकी विस्तृत विवेचना यहाँ हमारा विषय नहीं है। लेकिन मूल विषय, यानी आतंकवादी लाइन के चरित्र एवं परिणतियों को भलीभाँति समझने के लिए कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन की स्थिति के बारे में सूत्रवत कुछ चर्चा ज़रूरी है। जिन कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठनों ने आतंकवादी लाइन से साहसपूर्वक निर्णायक विच्छेद करने के बजाय ग़लतियों को पिछले दरवाज़े से, धीरे-धीरे करके ठीक कर लेने और पैबन्दसाज़ी का रास्ता अपनाया, वे इंच-इंच खिसकते हुए अब दक्षिणपन्थी भटकाव के दूसरे छोर तक जा पहुँचे हैं। इनमें से कुछ तो भाकपा-माकपा जैसी संशोधनवादी पार्टियों की क़तार में जा बैठे हैं और शेष अधिकांश, कुछ आगे-पीछे करके इसी लाइन में लगे हुए हैं। चारु मजूमदार की आतंकवादी लाइन के पिटने के बाद **भाकपा-मा.ले. (लिबरेशन)** गुप ने फिर ज़ोर-शोर से इसी लाइन को आगे बढ़ाने की कोशिश की, लेकिन फिर यह लाइन पिट गयी। 1980 के बाद इस गुप ने भरपूर लीपापोती करते हुए अपनी विचारधारात्मक अवस्थिति में नाटकीय परिवर्तन किये और आतंकवादी खड्ड से निकलकर सीधे संसदीय राजनीति की खाई में जा गिरा। शेष जो संगठन दक्षिणपन्थी भटकाव के शिकार हैं, वे कुछ रस्मी क़वायदों और अर्थवादी-सुधारवादी सरगर्मियों के ज़रिये अपने जीवित होने का प्रमाण देते रहते हैं। भाकपा-मा.ले. (लिबरेशन)

ग्रुप के संसदमार्गी होने तक आतंकवादी लाइन के मुख्य वाहक के रूप में **भाकपा-मा.ले. (पीपुल्स वार) ग्रुप** सामने आ चुका था। कुछ अन्य “वामपन्थी” दुस्साहसवादी संगठनों से इसकी एकता के बाद आतंकवादी लाइन के ध्रुवीकरण की प्रक्रिया अपने अंजाम तक जा पहुँची और आज **भाकपा (माओवादी)** इस लाइन के प्रतिनिधि संगठन के रूप में, देश के कुछ हिस्सों में प्रभावी रूप में सक्रिय है।

भारत के कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी आन्दोलन की मूल समस्या को दो हिस्सों में बाँटकर देखा जा सकता है। पहली है विचारधारा की समस्या और दूसरी है क्रान्ति के ग़लत कार्यक्रम की समस्या। कम्युनिस्ट आन्दोलन में विचारधारात्मक कमजोरी का एक लम्बा इतिहास रहा है, इसके चलते आन्दोलन हमेशा ही “वामपन्थी” दुस्साहसवाद और दक्षिणपन्थी अवसरवाद के दो छोरों के बीच झूलता रहा है। दूसरी समस्या के मूल में भी विचारधारात्मक कमजोरी ही मूल कारण है। भारतीय समाज के वर्ग-सम्बन्धों को समझकर क्रान्ति का सही कार्यक्रम तय करने के बजाय भारत का कम्युनिस्ट नेतृत्व हमेशा से अन्तरराष्ट्रीय नेतृत्व और सफल क्रान्ति कर चुकी बड़ी पार्टियों का मुँह जोहता रहा है। नक्सलबाड़ी संघर्ष से उपजी क्रान्तिकारी धारा के नेतृत्व ने भी ऐसा ही किया। भारत के विकासमान पूँजीवादी उत्पादन-सम्बन्धों का अध्ययन करके क्रान्ति के शत्रु और मित्र वर्गों का, क्रान्ति के सहभागी वर्गों के संयुक्त मोर्चे का, तथा क्रान्ति की रणनीति एवं मार्ग का निर्धारण करने के बजाय इस नेतृत्व ने भारतीय समाज को भी क्रान्ति-पूर्व चीन जैसा अर्द्धसामन्ती-अर्द्धऔपनिवेशिक मान लिया और चीनी नवजनवादी क्रान्ति के कार्यक्रम को हूबहू अपना लिया। दरअसल क्रान्ति के सही कार्यक्रम की ज़रूरत ही तब होती है जब जनता के विभिन्न वर्गों को उनकी माँगों पर लामबन्द करना हो और उनका संयुक्त मोर्चा बनाना हो। वर्ग-शत्रुओं के सफ़ाये की लाइन और आर्थिक-राजनीतिक संघर्षों के विभिन्न रूपों को अपनाये बिना सीधे हथियारबन्द संघर्ष छेड़ देने की लाइन के लिए क्रान्ति के कार्यक्रम की वस्तुतः आवश्यकता ही नहीं थी। इसी प्रकार, कुछ अर्थवादी-सुधारवादी क़वायदें करते रहने वाले दक्षिणपन्थी अवसरवाद के लिए भी इस बात का कोई मतलब नहीं होता कि क्रान्ति का कार्यक्रम क्या है, और वह सही है या ग़लत है। लेकिन फिर भी, जिन कम्युनिस्ट क्रान्तिकारी संगठनों ने किसी हद तक एक ग़लत कार्यक्रम को लागू करने की कोशिश की, वे वस्तुगत रूप से वर्ग-सहयोग की लाइन पर चले गये और इस व्यवहार की निरन्तरता ने कालान्तर में उनकी विचारधारात्मक अवस्थिति में निहित विचलनों को बढ़ाने में एक अहम भूमिका निभायी है। एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जायेगी। भारत में क्रमिक प्रक्रिया में पूँजीवादी भूमि-सुधार की नीतियों पर अमल के बाद ज़मीन के मालिकाने का सवाल अब हल हो चुका है और गाँवों में भी अब पूँजी और श्रम के बीच का

अन्तरविरोध प्रधान हो चुका है। गाँवों के धनी किसान अब बाज़ार और मुनाफ़े के लिए उत्पादन करते हैं और मज़दूरों के अतिरिक्त उन छोटे और निम्न-मध्यम किसानों से भी उनके अन्तरविरोध शत्रुतापूर्ण बन चुके हैं, जिनकी खेती वे पूँजी की ताक़त के बूते हड़पते रहते हैं। लेकिन जनवादी क्रान्ति के भूमि-कार्यक्रम के अनुसार बड़े और उच्च-मध्यम मालिक किसानों को भी साथ लेने के लिए, भारत के अधिकांश कम्युनिस्ट संगठन कृषि की लागत को घटाने और कृषि-उत्पादों के लाभकारी मूल्य के लिए संघर्ष करते हैं जो मूलतः मुनाफ़ाख़ोर मालिक किसानों की वर्ग माँगें हैं और सर्वहारा के वर्ग हितों के एकदम विरुद्ध हैं। इसी प्रकार, भारतीय पूँजीपति वर्ग का हर हिस्सा आज साम्राज्यवाद का कनिष्ठ साड़ीदार बनकर विश्व पूँजीवादी तन्त्र में व्यवस्थित हो चुका है, लेकिन राष्ट्रीय जनवादी क्रान्ति के कार्यक्रम के हिसाब से पूँजीपति वर्ग के किसी एक हिस्से को राष्ट्रीय चरित्र वाला मानने का हठ विभिन्न मा-ले संगठनों को वस्तुगत रूप से वर्ग सहयोगवादी अवस्थिति पर ले जाकर खड़ा कर देता है। कार्यक्रम की ग़लत समझ वस्तुगत रूप से वर्ग सहयोगवादी आचरण तक पहुँचा देती है, जिसकी निरन्तरता विचारधारात्मक भटकाव को बढ़ावा देती है यानी विचारधारात्मक कमज़ोरी एक सही कार्यक्रम के निर्धारण में बाधक बनती है और फिर एक ग़लत कार्यक्रम पर अमल विचारधारात्मक भटकाव को मज़बूत बनाता है। यही कारण है कि आन्ध्र और पंजाब के जिन क्रान्तिकारियों ने चारु मजूमदार की आतंकवादी लाइन का विरोध किया था, वे भी कार्यक्रम की ग़लत समझ के कारण आज जड़ता और दक्षिणपन्थी अवसरवादी भटकाव के शिकार हैं। नक्सलबाड़ी संघर्ष से फूटी धारा में से निकली बस कुछ ही शक्तियाँ हैं जो समाजवादी क्रान्ति के सही कार्यक्रम और क्रान्तिकारी जनदिशा के आधार पर आगे बढ़ने के लिए प्रयासरत हैं। लेकिन आज की प्रतिकूल परिस्थितियों में, ज़ाहिर है कि उनका रास्ता लम्बा, अत्यन्त कठिन और बेहद चुनौतीपूर्ण होगा।

भाकपा (माओवादी) का कथित माओवाद : आतंकवादी राजनीति के परचम पर “जनदिशा” के बेलबूटे।

कथित माओवादियों की दिवालिया विचारधारा, कठमुल्लावादी कार्यक्रम और शेखचिल्ली के सपनों जैसी क्रान्ति-योजना।

बहरहाल, हम आतंकवादी लाइन की चर्चा पर वापस लौटते हैं। चारु मजूमदार की पुरानी आतंकवादी लाइन को भी आज भाकपा (माओवादी) कुछ चतुराईपूर्ण और भ्रामक फेरबदल के साथ लागू कर रही है। यह एक विडम्बना ही है कि यह संगठन अपने आपको माओवादी कहता है, जबकि माओ त्से-तुङ

क्रान्तिकारी जनदिशा के महान प्रयोगकर्ता तथा दक्षिणपन्थी और “वामपन्थी” अवसरवाद के कट्टर विरोधी थे।

यह संगठन खेती-बाड़ी के मुख्य मैदानी क्षेत्रों में विफलता के बाद, इन दिनों सुदूर जंगलों-पहाड़ों के कुछ आदिवासी-बहुल क्षेत्रों में हथियारबन्द संघर्ष की अपनी लाइन को इस दावे के साथ लागू कर रहा है कि भारतीय क्रान्ति अब सशस्त्र संघर्ष के रूप अपनाए की उच्चतर मंजिल में प्रविष्ट हो चुकी है। लेकिन पूरे परिदृश्य पर जब हम निगाह डालते हैं तो इस लाइन का दिवालियापन एकदम उजागर हो जाता है। विगत लगभग दो दशकों के तीव्र पूँजीवादी विकास के बाद भारत के गाँवों-शहरों की कुल सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा आबादी की जनसंख्या आज पचपन करोड़ से भी कुछ ऊपर पहुँच रही है। इस आबादी के बीच भाकपा (माओवादी) की पहुँच-पकड़ न के बराबर है। गाँवों से पूँजी की मार से प्रतिवर्ष करोड़ों की संख्या में विस्थापित हो रहे किसान लगातार उन औद्योगिक मजदूरों की कृतारों में शामिल हो रहे हैं, जिनकी चेतना उन्नत तकनोलॉजी वाले उत्पादन-कार्यों में भागीदारी के कारण उन्नत है। लेकिन उदारीकरण-निजीकरण की घनघोर मजदूर-उत्पीड़क नीतियों के इस दौर में वे ठेका या दिहाड़ी मजदूर के रूप में कारखानों में 50-60 रुपये की दिहाड़ी पर दस-दस बारह-बारह घण्टे खट रहे हैं। इस क्रान्तिकारी सम्भावना-सम्पन्न औद्योगिक सर्वहारा आबादी के बीच भाकपा (माओवादी) का कोई काम या आधार नहीं है। शहरी व ग्रामीण मध्य वर्ग के तथा मध्यम किसानों के निचले संस्तर पूँजी की मार से लगातार तबाह हो रहे हैं और पूँजीवादी व्यवस्था में अपना कोई भविष्य नहीं देखते। इस आबादी को भी संगठित करने का भाकपा (माओवादी) का कोई महत्त्वपूर्ण प्रयास नहीं है। जैसे चारु मजूमदार के समय के आतंकवाद से भिन्न, भाकपा (माओवादी) अपनी लाइन को क्रान्तिकारी जनदिशा की लाइन सिद्ध करने के लिए छात्रों-युवाओं, मजदूरों, मध्य वर्ग और किसानों के बीच जनसंगठन बनाकर जनकारवाइयाँ करने के तथ्य दे सकती है, लेकिन वास्तविकता क्या है? इस पार्टी के सभी तथाकथित जनसंगठन, जनसंगठन नहीं बल्कि पार्टी के मोर्चा संगठन के रूप में, बल्कि उससे भी आगे, पार्टी की कानूनी शाखाओं के समान काम करते हैं। ये विभिन्न वर्गों-समुदायों को व्यवहारतः उनकी वर्गीय माँगों के किसी कार्यक्रम पर नहीं, बल्कि सीधे मार्क्सवाद-लेनिनवाद की विचारधारा पर संगठित करते हैं। यह संयुक्त मोर्चे व जनसंगठनों के प्रति “वामपन्थी” संकीर्णतावादी रुझान है, जो “वामपन्थी” दुस्साहसवाद की ही एक अभिलाक्षणिकता है। इनके छात्र-युवा संगठनों की एकमात्र भूमिका पार्टी में युवा विद्रोहियों के भर्ती-केन्द्र की है। जैसे कुछ क्षेत्रों में इस पार्टी ने औद्योगिक मजदूरों के बीच काम की भी कोशिश की, लेकिन वहाँ आर्थिक संघर्ष के साथ-साथ राजनीतिक

प्रचार-शिक्षा और राजनीतिक संघर्ष की सही जनदिशा लागू करने के बजाय गरमागरम “वामपन्थी” लफ्फाज़ी के साथ इन्होंने पूरी तरह से भोंड़ी अर्थवादी लाइन लागू की। अब यह काम बस नाम को ही रह गया है। चूँकि यह संगठन भी नवजनवादी क्रान्ति की बात करता है, इसलिए इस लाइन को पंजाब और देश के कुछ अन्य इलाकों में लागू करते हुए इसने भी ग्रामीण सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा आबादी को पूरी तरह छोड़कर कृषि के लागत मूल्य घटाने और लाभकारी मूल्य पाने की माँग उठायी और इस तरह शोषक बड़े मालिक किसानों का दुमछल्ला बन गया। **कथनी में मार्क्सवादी और करनी में नरोदवादी** होने का यह अनूठा उदाहरण है। शहरी बुद्धिजीवी जो ‘बिना हींग-फिटकरी लगे रंग चोखा’ वाले क्रान्ति-समर्थक होते हैं, उनके निष्क्रिय उग्रपरिवर्तनवाद (पैसिव रैडिकलिज़्म) को तुष्ट करने वाला मनोनुकूल काम उन्हें सौंप दिया गया है। वे राज्यसत्ता के नये सेफ्टीवाल्क्स – भाँति-भाँति के एन.जी.ओ. पन्थियों, बी.डी. शर्मा जैसे प्रतिक्रियावादियों और उदारीकरण के पुनरुत्थानवादी-गाँधीवादी विरोधियों की रंग-बिरंगी जमातों के साथ धरने-प्रदर्शन-जलसों का मंच सजाकर “साम्राज्यवाद का विरोध” करते रहते हैं। शहरी बुद्धिजीवियों को लगता है कि वे साम्राज्यवाद-विरोध और बौद्धिक कार्यों का मोर्चा बिना किसी खतरे-तकलीफ के सँभाले हुए हैं और उधर जंगलों-पहाड़ों में असली काम, यानी लोकयुद्ध तो जारी ही है! इस तरह भाकपा (माओवादी) की **जनकारवाइयाँ** या तो “वामपन्थी” संकीर्णतावाद या फिर दक्षिणपन्थी अवसरवाद का विचित्र नमूना पेश करती हैं। **भाकपा (माओवादी) की आतंकवादी लाइन इस मायने में चारु मजूमदार की आतंकवादी लाइन से भिन्न है कि इसके साथ-साथ दक्षिणपन्थी अवसरवाद की भी विचित्र मिलावट मौजूद है।** यह “वामपन्थी” और दक्षिणपन्थी अवसरवाद की विचित्र, बदबूदार बिरयानी परोस रही है। “वामपन्थी” दुस्साहसवादी लाइन के पिटने के बाद, पूरी सम्भावना है कि यह पार्टी या इसका कोई हिस्सा भी भाकपा (माले) लिबरेशन की तरह सीधे दक्षिणपन्थ का शरणागत हो जाये। दूसरा नतीजा यह हो सकता है कि यह पूरा संगठन ही अपने आन्तरिक अन्तरविरोधों और राज्यसत्ता के दमन का शिकार होकर बिखर जाये।

भाकपा (माओवादी) का मुख्य काम आज झारखण्ड और छत्तीसगढ़ के वनक्षेत्रों के उन आदिवासियों के बीच है जो प्रशासन, पुलिस और ठेकेदारों के बर्बर उत्पीड़न के शिकार हैं। इन्हीं उत्पीड़कों के विरुद्ध हथियारबन्द कारवाइयों ने उनमें आतंक पैदा करके भागने को विवश किया है, जिसके चलते कथित माओवादियों को उत्पीड़ित आदिवासी आबादी में आधार बनाने का अवसर मिला है। इस आबादी के लिए कथित माओवादी ज़्यादा से ज़्यादा वैसे ही नायक हैं जैसे बिरसा मुण्डा, सिद्धू-कानू आदि थे। **पहली बात तो यह कि भाकपा**

(माओवादी) यदि देश के सभी ऐसे दुर्गम पर्वतों एवं वनक्षेत्रों में अपना आधार-क्षेत्र बना भी ले (जो क़तई सम्भव नहीं है क्योंकि ऐसे क्षेत्रों के विस्तार की सभी हालिया कोशिशें विफल हो चुकी हैं) तो भी उसकी पहुँच आबादी के बमुश्किल तमाम पन्द्रह फ़ीसदी हिस्से तक ही होगी और वह भी ऐसी आबादी, जिसकी चेतना नितान्त पिछड़ी उत्पादन-प्रणाली में भागीदारी के चलते नितान्त पिछड़ी हुई है। यह आबादी देश के करोड़ों औद्योगिक मज़दूरों और ग्रामीण सर्वहाराओं से ही नहीं बल्कि छोटे-मँझोले किसानों से भी मीलों पीछे की चेतना रखती है। भाकपा (माओवादी) इनके बीच अपना आधार बनाये हुए है, क्योंकि सिर्फ़ वहीं ऐसा सम्भव है। यह पार्टी जैसे ही अपने “चिडकाड़ शान पर्वतीय क्षेत्र” से बाहर आकर नयी जनवादी क्रान्ति की लाइन के हिसाब से गाँवों से शहरों को घेरने के लिए मैदानी ग्रामीण इलाकों में आधार-क्षेत्र बनाने की कोशिश करेगी, वैसे ही शेखचिल्ली के सारे सपने धराशायी हो जायेंगे। भाकपा (माओवादी) यह समझती है, इसलिए वह छिटपुट आतंकवादी कार्रवाइयों से आगे क़दम क़तई नहीं उठाती रही है, और इन आतंकवादी कार्रवाइयों को ही लोकयुद्ध का नाम देती रही है। यह एक मज़ाक़ ही है कि दो राज्यों के कुछ ज़िलों के जंगल-क्षेत्रों में आधार और कुछ और इलाकों में छिटपुट हथियारबन्द कार्रवाइयों वाली इस पार्टी ने अब छापामार युद्ध (गुरिल्ला वारफ़ेयर) को चलायमान युद्ध (मोबाइल वारफ़ेयर) की मंज़िल में ले जाने का नारा दे दिया है (अपने छापामार दस्तों को जनमुक्ति सेना का नाम तो वह पहले ही दे चुकी है)। चीनी क्रान्ति में दीर्घकालिक लोकयुद्ध के विकास के इतिहास का कोई भी विद्यार्थी यह आसानी से समझ सकता है कि भारत में आज यदि जनवादी क्रान्ति की मंज़िल होती, तब भी कथित माओवादियों की योजनाएँ और मंसूबे शेखचिल्ली के सपनों से अधिक कुछ नहीं होते।

“वामपन्थी” दुस्साहसवाद की यह लाइन पूँजीवादी व्यवस्था के लिए, ज़्यादा से ज़्यादा, क़ानून-व्यवस्था की समस्या पैदा कर सकती है, लेकिन एक अरब पच्चीस करोड़ आबादी वाले इस विशाल देश की 55 करोड़ सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा आबादी और करीब 40 करोड़ अन्य शोषित-उत्पीड़ित वर्गों की आबादी को साम्राज्यवाद और पूँजीवाद के विरुद्ध लामबन्द करके वर्तमान राज्यसत्ता को उखाड़ फेंकने के वास्तविक ऐतिहासिक कार्यभार को क़तई अंजाम नहीं दे सकती। वैसे आर्थिक तौर पर भी देखें तो भाकपा (माओवादी) जिन क्षेत्रों में अपने आधार इलाकों का विस्तार करना चाहती है (तथाकथित ‘रेड कॉरीडोर’) वह भारतीय पूँजीवाद की ‘लाइफ़-लाइन’ नहीं है। उन्नत कृषि और औद्योगिक उत्पादन के क्षेत्रों में प्रभाव-विस्तार की कोशिश करते ही साम्राज्यवाद समर्थित और व्यापक सामाजिक अवलम्बों

तथा आधुनिक सुगठित सैन्य-तन्त्र वाली भारतीय बुर्जुआ राज्यसत्ता इन्हें कुचलने में अपनी पूरी शक्ति लगा देगी। इससे भी अहम बात यह है कि इन क्षेत्रों की जनता आतंकवाद की लाइन को अपने सहज वर्ग-बोध से ही खारिज कर देगी। जनता यदि सक्रिय रूप से साथ हो तो राज्यसत्ता का शक्तिशाली से शक्तिशाली दमनतन्त्र भी कागज़ी बाघ साबित होता है। लेकिन जनता यदि साथ न हो तो थोड़े से क्रान्तिकारी शौर्य, कुर्बानी आतंकवादी छापामार कार्रवाइयों के सहारे राज्यसत्ता के दमन-तन्त्र का मुकाबला नहीं कर सकते – इतिहास ने बार-बार यही सिद्ध किया है। भारत जैसे देश में व्यापक जनसमुदाय के विभिन्न वर्गों को (सर्वोपरि तौर पर औद्योगिक सर्वहारा को, फिर गाँवों-शहरों की समस्त सर्वहारा-अर्द्धसर्वहारा आबादी को और फिर ग्रामीण-शहरी मध्य वर्ग तथा मँझोले किसानों के निचले संस्तरों को) उनकी आर्थिक-राजनीतिक माँगों पर संगठित करके तथा संघर्ष की लम्बी प्रक्रिया को क़दम-ब-क़दम आगे बढ़ाते हुए क्रान्तिकारी संकट की हर स्थिति का लाभ उठाते हुए, देशव्यापी जन-उभारों के कई चक्रों से गुज़रते हुए आम बग़ावत की निर्णायक मंज़िल पर पहुँचकर ही वास्तव में किसी आमूल परिवर्तनकारी सामाजिक क्रान्ति को अंजाम दिया जा सकता है। दीर्घकालिक लोकयुद्ध चलाने और मुक्त-क्षेत्र बनाकर गाँवों से शहरों को घेरते हुए राज्यसत्ता पर क़ब्ज़ा करने की कोई भी लाइन अमल में लाने की हर कोशिश वास्तव में कुछ सुदूर क्षेत्रों में छापामार कार्रवाइयों तक सिमटे रहने की सैन्यवादी-आतंकवादी लाइन के रूप में ही सामने आयेगी।

आतंकवादी लाइन पूँजीवादी व्यवस्था के लिए ज़्यादा से ज़्यादा क़ानून-व्यवस्था का सिरदर्द पैदा करती है, लेकिन इससे अहम बात यह है कि वह शासक वर्ग, उनकी राज्यसत्ता और उनके प्रचार-तन्त्र को यह मौक़ा देती है कि वह आतंकवादियों की कारगुज़ारियों के हवाले से सभी क्रान्तिकारियों के विरुद्ध दुष्प्रचार करे, उन्हें बदनाम करे, और व्यापक जनता में विभ्रम पैदा करे।

आतंकवाद क़ानून-व्यवस्था की समस्या पैदा कर सकता है, लेकिन क्रान्ति नहीं कर सकता। आतंकवाद सत्ताधारियों को क्रान्ति के विरुद्ध कुत्सा प्रचार का मौक़ा देता है। आतंकवाद जनता और क्रान्ति को सिर्फ़ नुक़सान पहुँचाता है। आतंकवाद पूँजीवादी समाज के विद्रोही मध्य वर्ग का दिशाहीन विद्रोह है। यह पूँजीवादी समाज की स्थायी परिघटना है। आतंकवाद क्रान्तियों की पराजय से उपजी निराशा की देन है। यह तभी तक प्रभावी रहता है, जब तक सही क्रान्तिकारी धारा कमज़ोर रहती है।

आतंकवाद लोगों को क्रान्ति का 'शॉर्टकट' बताता है और उनमें झूठी उम्मीदें पैदा करता है। लेकिन हर झूठी आशा आगे चलकर पूर्वापेक्षा

और अधिक गहरी निराशा को जन्म देती है। आतंकवादी लाइन जब अपनी विफलता, पराजय, बिखराव का शिकार होने या दूसरे छोर तक जाकर दक्षिणपन्थी अवसरवाद के दलदल में जा गिरने की तार्किक परिणति तक पहुँचती है तो मिथ्या उम्मीद वाले लोग गहरी निराशा में डूब जाते हैं और क्रान्ति की लहर पर प्रतिक्रान्ति की लहर कुछ और अधिक मजबूती के साथ, कुछ और अधिक समय के लिए हावी हो जाती है।

सामाजिक क्रान्ति एक वैज्ञानिक क्रिया है। और आज के युग की सामाजिक क्रान्ति, यानी सर्वहारा क्रान्ति एक संश्लिष्टतम-जटिलतम वैज्ञानिक क्रिया है जो ठोस सामाजिक परिस्थितियों के वस्तुपरक मूल्यांकन की माँग करती है और जन-समष्टि की समस्त ऊर्जा के व्यापकतम, सूक्ष्मतम और कुशलतम इस्तेमाल की माँग करती है। बेशक क्रान्तिकारी आशावाद, ऊर्जस्विता, स्पिरिट और जोशो-खरोश जरूरी है, लेकिन इसके नाम पर आनन-फ़ानन में क्रान्ति कर लेने की, कुर्बानी, वीरता, आतंक और षड्यन्त्र के सहारे राज्यसत्ता को पलट देने की मध्यवर्गीय जल्दबाजी एक जुनून है, हद दर्जे का शेखचिल्लीपन है, चरम कोटि का रूमानियत भरा मनोगतवाद है, जो ऐसे आतंकवादी क्रान्तिकारियों की तमाम सदिच्छाओं के बावजूद जनता और क्रान्ति को सिर्फ और सिर्फ नुकसान ही पहुँचाता है। इतिहास ने इसे बार-बार सिद्ध किया है और आगे भी ऐसा ही होगा।

आतंकवाद पूँजीवादी समाज की, विशेषकर ऐसे पिछड़े पूँजीवादी समाजों की, जहाँ साम्राज्यवादी-पूँजीवादी शोषण-उत्पीड़न का दबाव अत्यधिक है और पूँजीवादी जनवाद का दायरा भी या तो अत्यन्त संकुचित या फिर अनुपस्थितप्राय है, एक लगभग स्थायी परिघटना है। मिसाल के तौर पर, आज के भारत को या तमाम लैटिन अमेरिकी देशों को ले सकते हैं। ऐसे समाजों में जो पूँजीवाद विकसित हुआ है, वह न केवल सर्वहाराओं की हड्डियाँ निचोड़ता है, बल्कि मध्य वर्ग पर भी तबाही का कहर बरपा करता है और उसकी निचली परतों को लगातार उजरती मजदूरों की कृतारों में धकेलता रहता है। इस पूँजीवाद में मजदूरों के साथ मध्यवर्गीय आबादी का भी भारी विस्तार हुआ है, जो बेहतर शिक्षा, समृद्धि और सुविधाजनक जीवन के सपने देखती है। लेकिन इसके एक बहुत छोटे से ऊपरी हिस्से के ही ये सपने पूरे होते हैं और यह हिस्सा पूँजीवादी सामाजिक-आर्थिक-राजनीतिक तन्त्र के एक वफादार और मजबूत खम्भे और सिपाही की भूमिका निभाता है। शेष मध्य वर्ग का बड़ा हिस्सा टूटे सपनों के “मलबे के मालिक” के रूप में जीने को अभिशप्त है। ऐसे मध्यवर्गीय युवाओं में से कुछ अपनी नियति को कमोबेश स्वीकार कर लेते हैं, कुछ अपने पीले-बीमार चेहरे लिये इस या उस फ़ासिस्ट दल

या गिरोह के झुण्ड में शामिल हो जाते हैं, कुछ अपनी नियति को सामाजिक मुक्ति के व्यापक प्रश्न से जोड़कर देखने लगते हैं, कुछ बस घुटते हुए जीते रहते हैं और क्रान्तिकारी उभारों के दौर में सक्रिय जनसमुदाय का हिस्सा बन जाते हैं तथा कुछ ऐसे भी होते हैं जो क्रोध और घृणा की आग में इस व्यवस्था को जलाकर राख कर देना चाहते हैं। इसी अन्तिम कोटि के जुनूनी विद्रोही मध्यवर्गीय युवाओं के बीच से आतंकवाद के नये रंगरूट भर्ती होते हैं। ऐसा आतंकवाद वामपन्थी आन्दोलन के दायरे के भीतर भी हो सकता है और बाहर भी हो सकता है। पूँजीवादी समाज में आनन-फ़ानन में व्यवस्था बदलने की चाहत वाले ऐसे रोमानी विद्रोही युवा पैदा होते रहेंगे जिनमें न क्रान्ति के विज्ञान को जानने-समझने का धीरज होगा और न ही मेहनतकश जनता की इतिहास-निर्मात्री शक्ति में भरोसा। ऐसे में हर प्रकार के आतंकवाद को भर्ती के लिए रंगरूट मिलते रहेंगे और एक या दूसरे रूप में इस परिघटना की निरन्तरता बनी रहेगी।

दूसरी अहम बात यह है कि आतंकवाद या दुस्साहसवाद की धारा ऐसे दौरों में विशेष तौर पर मजबूत होकर उभरती है, जब क्रान्तियों की पराजय का दौर होता है, शोषक-शासक वर्गों को जब मनमानी की पूरी छूट होती है, जब क्रान्ति की लहर पर प्रतिक्रान्ति की लहर हावी होती है। ऐसी प्रतिकूल स्थितियों में भी आम इंसान एकदम केंचुआ या पालतू कुत्ता होकर नहीं जी सकता। इसलिए यहाँ-वहाँ छिटपुट स्वतःस्फूर्त आन्दोलन और संघर्ष होते रहते हैं और एक सही दिशा और समझ के अभाव में विद्रोह की एक अभिव्यक्ति विविध आतंकवादी धाराओं के रूप में भी सामने आती रहती है। कहा जा सकता है कि आतंकवाद गतिरोध, जड़ता, पराजय और प्रतिक्रिया के घुटन भरे दौरों में एक ही साथ निराशा और जिजीविषा भरे विद्रोह – दोनों की ही अभिव्यक्ति होती है। यानी अल्पकाल में इसका एक सकारात्मक पहलू हो सकता है, लेकिन दीर्घकाल में, अन्तिम निष्कर्ष के तौर पर, एक राजनीतिक कार्यदिशा के रूप में इसकी निरन्तरता क्रान्ति की प्रक्रिया को नुकसान पहुँचाती है और वस्तुगत तौर पर, शासक वर्गों को लाभ पहुँचाती है।

आतंकवाद तभी तक एक प्रभावी राजनीतिक शक्ति बना रहता है, जब तक क्रान्ति की सही नेतृत्वकारी मनोगत शक्तियाँ कमज़ोर, अनुपस्थित, पराजित या बिखरी हुई अवस्था में रहती हैं और मध्य वर्ग तथा आम मेहनतकशों के सामने कोई विकल्प स्पष्ट नहीं होता। क्रान्ति की सही लाइन हर हाल में क्रान्तिकारी जनदिशा को लागू करके ही आगे बढ़ सकती है। इस सही लाइन का एक आवश्यक कार्यभार यह भी होता है कि वह आतंकवाद

के विरुद्ध समझौताहीन विचारधारात्मक संघर्ष चलाये और दिग्भ्रमित क्रान्तिकारी कृतारों को अपने इर्द-गिर्द ला खड़ा करने की हरचन्द कोशिश करे। उसका दायित्व है कि वह विद्रोही मध्यवर्गीय युवाओं को अपने बूते क्रान्ति कर लेने के मनोगतवादी मंसूबे से छुटकारा पाकर बहुसंख्यक मेहनतकश जनसमुदाय के साथ एकजुट हो जाने के लिए प्रेरित करे।

शासक वर्ग क्रान्ति को ही आतंकवाद बताता रहता है।
क्रान्तिकारी हिंसा और प्रतिक्रान्तिकारी हिंसा के बीच फर्क समझना होगा।
अहिंसा का भ्रामक मिथक और वर्ग-युद्ध में हिंसा की सार्वकालिक ऐतिहासिक सच्चाई।
इतिहास में परिवर्तन का बल-सिद्धान्त।

जैसाकि हम ऊपर कह चुके हैं, शासक वर्ग आतंकवादी कार्रवाइयों से परेशान भले होता हो, लेकिन उसे वास्तव में जो भूत हर पल डराता रहता है, वह है जनक्रान्ति का भूत। इसीलिए, आतंकवादी सरगर्मियों का लाभ उठाकर, वह हर प्रकार की क्रान्तिकारी जन-कार्रवाई की नेतृत्वकारी शक्तियों को भी आतंकवादी घोषित कर देता है और क्रान्ति को ही आतंकवाद का पर्याय सिद्ध करने की कोशिश करता रहता है। यह एकदम सही है कि क्रान्तिकारी जनदिशा के समर्थक क्रान्तिकारी भी शासकवर्ग की प्रतिक्रान्तिकारी हिंसा के विरोध को और सिर से पैर तक आम लोगों के खून से लिथड़ी और हिंसा के बल से क़ायम राज्यसत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए व्यापक जनता द्वारा क्रान्तिकारी हिंसा के इस्तेमाल को सर्वथा न्यायसंगत और अपरिहार्य मानते हैं। यह क्रान्तिकारी हिंसा किसी की चाहत से स्वतन्त्र एक ऐतिहासिक अपरिहार्यता है जो इतिहास के आगे बढ़ने के लिए अनिवार्य है। अब तक के इतिहास में इसका न तो कोई अपवाद है न ही आगे होगा। परस्पर विरोधी वर्गों के बीच का सम्बन्ध, हालात चाहे युद्ध के हों या शान्ति के, कभी भी शान्तिपूर्ण नहीं होते। प्रकृति की ही तरह, समाज में भी, अपनी जड़ता के सहारे और बल की सहायता से क़ायम किसी सत्ता को विस्थापित करने के लिए बल का प्रयोग अपरिहार्य है। और दार्शनिक परिभाषा के हिसाब से, रक्तपात हो या न हो, बल-प्रयोग अपनेआप में हिंसा है। अहिंसा से सत्ता-परिवर्तन की धारणा वास्तव में एक मिथक है। किसी एक व्यक्ति का हृदय परिवर्तन हो सकता है, लेकिन समूचे शोषक

वर्ग का कदापि नहीं। जिन उत्पादन-सम्बन्धों के चलते उसकी शोषक-शासक की स्थिति होती है, उन्हें बदलने का सवाल एक वर्ग के रूप में उसके अस्तित्व का सवाल है, इसलिए उन उत्पादन-सम्बन्धों को कायम रखने वाली राज्यसत्ता के ध्वंस को स्वेच्छा से कदापि नहीं स्वीकार कर सकता।

स्वयं पूँजीवाद ने भी सामन्तवाद के विरुद्ध हिंसात्मक क्रान्ति करके ही विजय हासिल की थी। पूँजीवादी-जनवादी क्रान्तियों के महान नायकों ने स्वतन्त्रता-समानता-भ्रातृत्व के उदात्त जनवादी आदर्शों को लेकर समूची जनता को लामबन्द किया था और सामन्ती राज्यसत्ताओं को बल-प्रयोग द्वारा धूल में मिला दिया था। लेकिन इन क्रान्तियों के बाद जब पूँजीपति वर्ग सत्ता में आया तो मुक्ति के लाल झण्डे को धूल में फेंक दिया। आम मेहनतकश अवाम पर उसने बलपूर्वक पूँजी का बर्बर शासन कायम किया और क्रान्तिकारी हिंसा के बजाय प्रतिक्रान्तिकारी हिंसा उसका हथियार बन गयी। पूँजीवादी जनवादी क्रान्तियों के नायक वाशिंगटन, जैफर्सन, रोब्सपियर, दान्तों, मारा आदि आतंकवादी नहीं थे। वे क्रान्तिकारी थे जिन्होंने न्याय और समानता के लिए व्यापक जनता को साथ लेकर हिंसा के बल पर कायम सामन्ती सत्ताओं का हिंसा के द्वारा नाश किया। इसी प्रकार, लेनिन, माओ, हो ची मिन्ह आदि क्रान्तिकारी भी आतंकवादी नहीं बल्कि महान जननायक थे। नात्सियों को भी अहिंसा के उपदेश से नहीं समझाया जा सकता था। उन्हें प्रचण्ड युद्ध में नेस्तनाबूद करके ही मानवता को बचाया जा सकता था। गाँधी के सन्दर्भ में भी 'दे दी हमें आज़ादी बिना खड्ग बिना ढाल' एक भ्रामक मिथक है। पहली बात तो यह कि राजनीतिक स्वतन्त्रता प्राप्ति में केवल गाँधी और कांग्रेस की ही नहीं, बल्कि देश की जनता के तमाम संघर्षों की महत्त्वपूर्ण भूमिका थी। नौसेना विद्रोह, मजदूरों की देशव्यापी हड़तालों और किसान संघर्षों ने ब्रिटिश शासकों के सामने यह स्पष्ट कर दिया था कि यदि कांग्रेस को सत्ता सौंपकर वे अपने आर्थिक हितों की सीमित हद तक हिफाजत की कोशिश नहीं करेंगे तो एक प्रचण्ड जनक्रान्ति के हाथों उन्हें सबकुछ गँवाना पड़ेगा। यानी उपनिवेशवाद की पराजय के पीछे हिंसा के तथ्य (फ़ैक्ट ऑफ़ वायलेंस) और हिंसा की ही स्पष्ट निर्णायक भूमिका थी। जहाँ तक कांग्रेस और उसके नेतृत्व वाली राष्ट्रीय आन्दोलन की मुख्यधारा का सवाल है, उसने भी अपना सीमित लक्ष्य अहिंसा के द्वारा नहीं हासिल किया। स्वयं गाँधी की परिभाषा के अनुसार, केवल रक्तपात ही नहीं, हर प्रकार का बल-प्रयोग एक हिंसा होता है। हिंसा का भय पैदा करना भी एक हिंसा है। अहिंसा का अर्थ केवल हृदय परिवर्तन ही हो सकता है। भारतीय पूँजीपति वर्ग की शक्ति और महत्त्वाकांक्षा बढ़ने के साथ-साथ राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान कांग्रेस की याचना का स्वर भी जनान्दोलनों के दबाव के रूप में बदलता गया। अंग्रेज़ों ने हृदय परिवर्तन से भारत नहीं छोड़ा,

बल्कि प्रचण्ड जनान्दोलनों के प्रभाव और जनक्रान्ति के अन्देशों से घबराकर छोड़ा जिसका लाभ कांग्रेस ने उठाया।

जो शासक वर्ग जनक्रान्तियों और जनसंघर्षों के विरुद्ध हिंसा-हिंसा का इतना शोर मचाता है, वही रोज-रोज़ अपने अधिकारों के लिए आन्दोलनरत जनता के विरुद्ध पुलिसिया ज़ोरो-जुल्म का भरपूर इस्तेमाल करता है, जनविद्रोहों को सेना का इस्तेमाल करके कुचल देता है और जेल-फाँसी-कोड़े के बल पर ही इस अन्यायपूर्ण व्यवस्था को कायम रखता है। इसे वह क़ानून-व्यवस्था बनाये रखने के लिए ज़रूरी बताता है। यानी शासक वर्ग की दृष्टि में, अपने शोषण-शासन को कायम रखने के लिए ज़रूरी हिंसा तो उचित है, पर इस हिंसापूर्ण व्यवस्था के नाश के लिए की जाने वाली हिंसा ग़लत है। बात बिल्कुल साफ़ है। कुछ बुद्धिजीवी अहिंसा के पक्ष में धर्म और परम्परा से तर्क प्रस्तुत करते हैं, लेकिन दुनिया के सभी धार्मिक और पौराणिक मिथकों में भी ऐसे नायकों की बहुतायत है, जिन्होंने शस्त्र उठाकर अन्याय का प्रतिकार किया।

इस बात को समझ लेना ज़रूरी है कि बल-प्रयोग से कायम अन्यायपूर्ण सत्ता को बल-प्रयोग के बिना नष्ट नहीं किया जा सकता। हिंसा की सत्ता के विरुद्ध व्यापक उत्पीड़ित लोगों द्वारा हिंसा का सहारा लेना सर्वथा न्यायसंगत है। यह किसी की मर्जी या शौक़ नहीं बल्कि ऐतिहासिक अपरिहार्यता है। यही इतिहास का बल-सिद्धान्त है। हिंसा की न्यायसंगति या अन्यायसंगति इस बात से तय होती है कि वह ज़ोरो-जुल्म का साधन है या उसके प्रतिरोध का साधन है। शासक वर्ग की प्रतिक्रान्तिकारी हिंसा और व्यापक जनता द्वारा उसके प्रतिकार के लिए की जाने वाली हिंसा में फ़र्क़ किया जाना चाहिए। आतंकवादी हिंसा भी शासक वर्ग का प्रतिरोध करती है, लेकिन वह ग़लत है क्योंकि उसमें व्यापक जनता की सक्रिय भागीदारी नहीं होती और इसलिए वह क्रान्तिकारी परिवर्तन की लक्ष्यसिद्धि नहीं कर सकती। एक जनक्रान्ति भी अन्तिम निर्णय बल के प्रयोग से ही करती है, लेकिन ऐसी क्रान्तिकारी हिंसा न्यायसंगत है क्योंकि वह अन्याय और शोषण का खात्मा करती है और इतिहास को आगे ले जा सकती है। हर प्रकार की क्रान्ति को ही आतंकवाद सिद्ध करने की शासक वर्ग की शातिराना चाल को समझने के लिए इस प्रश्न को भलीभाँति समझ लेना ज़रूरी है।

हर प्रकार की हिंसा का कारण और मूल स्रोत शासक वर्ग की हिंसा होती है। हर प्रकार के आतंकवाद का मूल स्रोत और कारण भी राजकीय आतंकवाद, यानी शासक वर्ग की राज्यसत्ता का आतंकवाद होता है।

हर प्रकार की हिंसा का
मूल स्रोत – शासक वर्ग
की हिंसा। हर प्रकार के
आतंकवाद का मूल स्रोत
– राजकीय आतंकवाद।

हर शासक वर्ग
आतंकवादी। अमेरिका –
दुनिया का सबसे बड़ा
आतंकवादी।

प्रगतिशील आतंकवाद
और प्रतिक्रियावादी
आतंकवाद के बारे में।

समाज से विच्छिन्न, अल्पसंख्यक शासक
वर्ग की राज्यसत्ता, केवल और केवल आतंक,
षड्यन्त्र और खूनी दमन के सहारे ही कायम
रहती है और शोषणपूर्ण सामाजिक-आर्थिक
संरचना को कायम रखने का काम करती है।
क्रान्तिकारी आतंकवाद का रास्ता ग़लत,
अव्यावहारिक और क्रान्ति के लिए
नुक़सानदेह होता है, लेकिन वह भी
पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह का
स्वर होता है। उसका भी मूल कारण
राजकीय आतंकवाद ही होता है। अतः
राजकीय आतंकवादियों को कोई अधिकार
नहीं कि वे क्रान्तिकारी आतंकवाद को
कटघरे में खड़ा करें। इसीलिए, आतंकवाद
के रास्ते को ग़लत मानते हुए भी, जनदिशा
पर चलने वाले क्रान्तिकारी राज्यसत्ता द्वारा
क्रान्तिकारी आतंकवादियों के साथ

अपराधियों जैसा सुलूक करने का प्रबल विरोध करते हैं, उनके राजनीतिक
अधिकारों के लिए संघर्ष करते हैं और उन्हें व्यवस्था के विरुद्ध युद्ध छेड़ने
वाले क्रान्तिकारी योद्धा और राजनीतिक बन्दी का दर्जा और अधिकार देने
की माँग करते हैं।

पूरी दुनिया के पैमाने पर देखें तो अमेरिका आज आतंकवाद के विरुद्ध
संघर्ष का सबसे अधिक शोर मचाता है और सभी साम्राज्यवादी और पूँजीवादी
शासक उसके सुर में सुर मिलाते हैं। सच्चाई यह है कि अमेरिकी साम्राज्यवादी
ही आज दुनिया के सबसे बड़े आतंकवादी हैं। हिरोशिमा और नागासाकी पर
परमाणु बम फ़ासीवाद की पराजय के लिए नहीं, बल्कि साम्राज्यवादी विश्व पर
अपनी चौधराहत सिद्ध करने के लिए गिराया गया था। वियतनाम से लेकर इराक
तक बर्बर नरसंहारों का एक लम्बा सिलसिला रहा है। इजरायली ज़ियनवादी
फ़ासिस्ट शासन केवल अमेरिका के सहारे कायम है और फ़िलिस्तीनी जनता पर
कहर बरपा कर रहा है। विगत आधी सदी के दौरान दुनिया की सबसे ज़ालिम
तानाशाही हुकूमतें सिर्फ़ और सिर्फ़ अमेरिकी सरपरस्ती के बूते ही कायम रही
हैं और नरसंहारों-अत्याचारों का कहर बरपा करती रही हैं। दुनिया की सभी
क्रान्तियों को कुचलने और आर्थिक-सामरिक घेराबन्दी करके करोड़ों नागरिकों-
बूढ़ों-बच्चों को भुखमरी और बीमारियों से मारने का काम अमेरिका बीसवीं सदी

में लगातार करता रहा है। सच यह है कि अमेरिका ही दुनिया का सबसे बड़ा आतंकवादी देश है और फिर इसी क़तार में दुनिया के अन्य साम्राज्यवादी देश भी शामिल हैं। इन साम्राज्यवादियों का आतंकवाद राजकीय आतंकवाद का सर्वोच्च रूप है और यह पूरी दुनिया के सभी सरकारी आतंकवादों का संरक्षक और सहायक है।

आज जब पूरी दुनिया में साम्राज्यवाद के क्रान्तिकारी प्रतिरोध की धारा कमज़ोर है तो ऐसे समय में आम लोगों के बीच से, विशेषकर मध्य वर्ग के बीच से, ऐसे विद्रोही पैदा हो रहे हैं जिनकी क्रान्ति के विज्ञान की स्पष्ट समझ नहीं है और इसलिए वे आतंकवाद का रास्ता चुन रहे हैं। यानी शासक वर्ग का आतंकवाद पूरी दुनिया के पैमाने पर आतंकवादी प्रतिरोध की विभिन्न धाराओं को जन्म दे रहा है।

आज साम्राज्यवाद और पूँजीवाद का प्रतिरोध करने वाली दो प्रकार की आतंकवादी धाराएँ हमें देखने को मिलती हैं – एक, प्रगतिशील, सेक्युलर जीवनदृष्टि वाला क्रान्तिकारी आतंकवाद और दूसरा, पुनरुत्थानवादी, धार्मिक कट्टरपन्थी जीवनदृष्टि वाला प्रतिक्रियावादी आतंकवाद। पहली कोटि में स्वयं को वामपन्थी मानने वाले वे “वामपन्थी” दुस्साहसवादी और राष्ट्रीयताओं की मुक्ति के लिए संघर्षरत सेक्युलर मध्यवर्गीय क्रान्तिकारी आते हैं, जो भले ही जनसमुदाय की ताकत पर भरोसा न करते हों और राजनीति को बन्दूक के मातहत रखते हों, लेकिन वे सचेतन तौर पर आम जनता के हित की सोचते हैं, अतीत के बजाय भविष्य की ओर देखते हैं और एक सेक्युलर, जनवादी या समाजवादी समाज के निर्माण को अपना लक्ष्य घोषित करते हैं। दूसरी कोटि में, अलक़ायदा, तालिबान आदि जैसे वे आतंकवादी संगठन हैं, जो धार्मिक कट्टरपन्थी और पुनरुत्थानवादी हैं। आज वे साम्राज्यवाद का विरोध कर रहे हैं, लेकिन सेक्युलरिज़्म, जनवाद और समाजवाद को भी वे बराबर का शत्रु मानते हैं और आम मेहनतकश जनसमुदाय की सत्ता के किसी लक्ष्य से घोर नफ़रत का भाव रखते हैं। आने वाले समय में, इतिहास की स्वाभाविक गति से जनक्रान्तियों का रुका हुआ कारवाँ जब एक बार फिर गतिमान होगा तो पहली कोटि के क्रान्तिकारी आतंकवादी क़तारों का एक बड़ा हिस्सा हमसफ़र बनकर उसमें शामिल हो जायेगा। लेकिन, दूसरी कोटि के प्रतिक्रियावादी आतंकवादियों के साथ ऐसा क़तई सम्भव नहीं होगा। वे मज़बूती से प्रतिक्रिया के पक्ष में खड़े होंगे और तरह-तरह के फ़ासिस्टों की जमातों में शामिल हो जायेंगे क्योंकि उनकी मूल प्रकृति में आज भी फ़ासिज़्म के तत्व मौजूद हैं। यह जो प्रतिक्रियावादी आतंकवाद है, दरअसल यह साम्राज्यवाद का ही भस्मासुर है। दुनिया के विभिन्न देशों में सेक्युलर,

बुर्जुआ जनवादी सत्ताओं के विरुद्ध या किसी प्रतिस्पर्द्धी साम्राज्यवादी देश की पक्षधर सत्ता के विरुद्ध ऐसे आतंकवादी गुटों को अमेरिका ने ही कभी पाल-पोसकर तैयार किया था। ओसामा बिन-लादेन कभी अफ़गानिस्तान में रूसपरस्त नजीबुल्ला सरकार के विरुद्ध अमेरिकी मदद से लड़ने वाला भाड़े का सिपाही था। अफ़गानिस्तान के सभी धार्मिक कट्टरपन्थी गुटों और तालिबान को भी अमेरिकी सरपरस्ती हासिल थी। जब इनका काम पूरा हो गया और अमेरिका ने हाथ खींच लिया तो ये धार्मिक कट्टरपन्थी ग्रुप स्वतन्त्र होकर काम करने लगे। इनके धार्मिक कट्टरपन्थी विचारों की स्वतन्त्र गति ने अरब क्षेत्र और अफ़गानिस्तान में अमेरिकी मंसूबों और उनकी परिणतियों को इस्लाम विरोधी मानकर उसके विरुद्ध संघर्ष के लिए प्रेरित किया, जिसका नतीजा आज सामने है।

बहरहाल, आतंकवाद अपने क्रान्तिकारी और प्रतिक्रियावादी दोनों ही रूपों में, मुख्यतः – साम्राज्यवाद और पूँजीवाद की दमनकारी राज्यसत्ताओं की, राजकीय आतंकवाद की प्रतिक्रिया है। आतंकवाद पुनरुत्थान, विपर्यय और प्रतिक्रान्ति के अँधेरे में दिशाहीन विद्रोह और निराशा के माहौल की एक अभिव्यक्ति है। आतंकवाद जनक्रान्ति की नेतृत्वकारी मनोगत शक्तियों की अनुपस्थिति या कमजोरी या विफलता की भी एक अभिव्यक्ति और परिणति है। यह कल्पनावादी, रोमानी, विद्रोही मध्य वर्ग की अपने बूते आनन-फ़ानन में क्रान्ति कर लेने की उद्विग्नता और मेहनतकश जनसमुदाय की संगठित शक्ति एवं सृजनशीलता में उसकी अनास्था की अभिव्यक्ति और परिणाम है। आतंकवादी भटकाव को भलीभाँति समझना और उसके विरुद्ध अनथक विचारधारात्मक संघर्ष चलाना नये सिरे से जनक्रान्ति की तैयारी के इस दौर का एक अनिवार्यतः आवश्यक कार्यभार है।

• • •